M.A. Public Administration (Previous)

Semester – II

Paper Code – 20PUB22C1

ADMINISTRATIVE THEORY – II

प्रशासनिक सिद्धांत – II

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr.* _____

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

ISBN :

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

M.A. (P) Sem-II

Administrative Theory-(ii)

Total Marks = 100 | Semester End Exam = 80

Time = 3 hrs. | Internal Assessment = 20

Note:

The question paper will consist of **five** units. Each of the first four unit will contain two questions and the students shall be asked to attempt **one** question from each unit. Unit - V of each question paper shall contain **eight** short answer type questions without any internal choice and it shall be covering the entire syllabus. As such Unit - V shall be Compulsory.

Course Outcomes

CO-1. Student became well versed with the theories of Public Administration.

CO-2. They got knowledge about the Organizational Behaviour in an administrative system.

CO-3. They came to know about the role of Grievances Redressal Agencies and other initiatives taken towards citizen centric administration.

CO-4. They got awareness about the Emerging Trends in Public Administration

UNIT-I

Theories of Public Administration: Classical and Neo Classical, Scientific Management, Human Relations,, Bureaucratic Theory.

UNIT-II

Organizational Behaviour: Morale and Motivation, Supervision, Leadership and Communication.

UNIT-III

Administrative Corruption, Grievance redressal Institutions, Ombdusman, Lokpal & Lokayukta, Ethics & Integrity in Administration

UNIT-IV

Emerging Trends in Public Administration: Good Governance: Transparency & Public Accountability, and e-governance, Public Private Partnership. Impact of Liberalization, Privation & Globalization on Public Administration Initiatives towards Citizen Centric Administration

Suggested Readings:

1 White, L.D., Introduction to the Study of Public Administration, New York, Macmillan, 1995.

2 Maheshwari, S.R., Theories and Concepts in Public Administration, New Delhi, Allied Publishers, 1991.

3 Self, Peter, Administrative Theories and Politics, London, George Allen and Urwin, 1969

4 Golembiewski, Robert T., Public Administration as a Developing Discipline, New York, Marcel Dekker, Inc, 1977.

5 Sharma, M.P. and B.L. Sadana, Public Administration in Theory and Practice, Allahabad, Kitab Mahal, 2006 (English & Hindi Medium)

6 Marini, Frank (ed.) Toward a New Public Administration-The Minnowbrook Perspective, C.A. Chandler, Novato Publishing Co., 1971.

7 Marx, F.M. (ed.) Elements of Public Administration, New Delhi, Prentice Hall of India, 1964.

8 Srivastav, Om, Public Administration and Management-The Growing Horizons, Mumbai (Vol.II), 1991.

9 Arora, Ramesh K. (ed.), Administrative Theory, New Delhi, IIPA, 1984

10 10 Nigro, Felix and Lyoyd G. Nigro, Modern Public Administration, New York, Harper and Row, 1984.

11 Presthus, Robert, Public Administration, New York, The Ronald Press, 1975.

12 Goel, S.L., Advance Public Administration, Delhi, Deep & Deep Publication, 2003.

13 Puri, K.K. and G.S. Brara, Public Administration: Theory and Practice, Jalandhar, Bharat Prakashan, 2000 (Hindi Medium)

14 Avasthi and Avasthi, Administrative Theory, Agra, Luxmi Narain Aggarwal, Latest edition, 2004.

15 Kataria, Surender, Public Administration, Jaipur, Malik & Company, Latest edition (Hindi Medium)

16 Tyagi, A.R., Public Administration (Principles and Practice) Delhi, Atma Ram and Sons, 2001.

17 Fadia, B.L. and Kuldeep Fadia, Public Administration, Agra, Sahitya Bhawan Publication, 2000

18 Basu, Rumki, Public Administration: Concept and Theories, New Delhi, Sterling Publishers, 1990.

विषय सूची

इकाई 1:– Theories of Public Administration: Classical and Neo Classical, Scientific Management, Human Relations, Bureaucratic Theory.

1. शास्त्रीय उपागम 1–6

- चार स्तम्भ।
- मान्यताएँ।

2. वैज्ञानिक प्रबन्ध 7–11

- वैज्ञानिक प्रबन्ध की परिभाषाएँ
- वैज्ञानिक प्रबन्ध अथवा शॉप प्रबन्ध का दर्शन
- वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त

3. मानवीय सम्बन्ध उपागम 12–18

- मानव सम्बन्ध उपागम की विशेषताएँ
- यांत्रिक एवं मानव सम्बन्ध उपागम में अन्तर
- एल्टन मेयो के मुख्य प्रयोग

4. नौकरशाही उपागम 19–27

- उदय के कारण
- नौकरशाही के प्रकार
- नौकरशाही की विशेषताएँ

इकाई 2 :– Organizational Behaviour: Morale and Motivation, Supervision, Leadership and Communication.

5. मनोबल एवं अभिप्रेरणा 28–32

- अभिप्रेरणा का अर्थ
- अभिप्रेरणा के सिद्धान्त
- मनोबल
- मनोबल एवं अभिप्रेरणा मे अंतर

6. पर्यवेक्षण 33–35

- पर्यवेक्षण के प्रकार
- पर्यवेक्षण के ढ़ंग

7. नेतृत्व 36–38

- प्रभाव के स्त्रोत
- नेतृत्व की शैलिया
- नेतृत्व के उपागम

8. संचार 39–45

- संचार के तत्व
- संचार के प्रकार
- संचार के साधन

इकाई 3 :– Administrative Corruption, Grievance redressal Institutions, Ombdusman, Lokpal & Lokayukta, Ethics & Integrity in Administration

9. प्रशासकीय भ्रष्टाचार 46–49

- भारत में भ्रष्टाचार की व्यापकता
- प्रशासन में भ्रष्टाचार के कारणों का विश्लेषण
- भ्रष्टाचार के विभिन्न रूप
- भ्रष्टाचार निवार के उपाय

10. शिकायत निवारण संस्थान 50–52

- अम्बुड्समैन की आवश्यकता
- भारत में अम्बुड्समैन
- राज्य स्तर पर अम्बुड्समैन

11. प्रशासन में नैतिकता एवं सत्यनिष्ठा 53–55

इकाई 4 :– Emerging Trends in Public Administration: Good Governance: Transparency & Public Accountability, and e-governance, Public Private Partnership. Impact of Liberalization, Privation & Globalization on Public Administration Initiatives towards Citizen Centric Administration

12. सुशासन 56–58

- अवधारणा
- सुशासन के लक्षण

13. पारदर्शिता एवं लोक जवाबदेही 59–62

- जवाबदेही के उपकरण

- जवाबदेही की सीमाएँ
- जवाबदेही निश्चित करने की नितियाँ

14. ई – गवर्नेंस **63–66**

- ई–प्रशासन की विशेषताएँ
- राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस
- ई–प्रशासन के लाभ

15. सार्वजनिक निजी भागीदारी **67–68**

- सार्वजनिक निजी भागीदारी की सफलता
- सार्वजनिक निजी भागीदारी के लाभ तथा नुकसान

16. वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के लोक प्रशासन पर प्रभाव **69–71**

- वैश्वीकरण का अर्थ
- उदारीकरण का अर्थ
- लोक प्रशासन पर प्रभाव

17. नागरिक केंद्रित प्रशासन के लिए पहल **72–73**

- द्वितिय प्रशासनिक सुधार आयोग के मुद्दे
- भारत में लोक प्रशासन को बदलने के उद्देश्य से सुधार

अभ्यास हेतू प्रश्न **74**

1. शास्त्रीय उपागम
(Classical Approach)

कास्ट एवं रोजेन्सबर्ग के अनुसार संगठन के अध्ययन उपागमों को तीन कालों में बाँटा जा सकता है – परम्परावदी या शास्त्रीय काल, व्यवहारवादी या मानव सम्बन्ध काल और आधुनिक या व्यवस्थावादी काल। शास्त्रीय उपागम की उत्पत्ति बीसवीं सदी के आरम्भ में हुई जब एफ0डब्ल्यू टेलर, हैनरी फेयोल, मैक्स वेबर, मुने व रेली, गुलिक तथा उर्विक ने संगठन का वैज्ञानिक अध्ययन शुरू किया और विभिन्न सिद्धान्तों का निर्माण किया। टेलर ने कार्यकुशलता और मितव्ययता के लिए वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त बनाए। फ्रांसीसी प्रबन्धक हेनरी फेयोल ने 1916 में अपनी पुस्तक 'जनरल इन्डस्ट्रीयल एडमिनिस्ट्रेशन' में संगठन के मुख्य सिद्धान्तों की चर्चा की। जेम्स मूने ने रेली के साथ मिलकर 1918 में 'ऑनवर्ड इन्डस्ट्री' नामक पुस्तक लिखी। लूथर गुलिक तथा लिंडल एफ0 उर्विक ने अपने अनुभवों और अध्ययनों के आधार पर संगठन के सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण किया। 1937 में उन्होंने 'पेपर ऑन साईंस ऑफ एडमिनिस्टेशन' नामक पुस्तक का सम्पादन किया जिसमें कहा गया कि कार्यकुशलता से निवेदित लोक प्रशासन विज्ञान बन सकता है। आमतौर पर इनहीं के सिद्धान्तों को संगठन का पुरातन उपागम या संरचनात्मक उपागम के नाम से भी पुकारते हैं। वूडरो विल्सन इसे राजनैतिक विज्ञान का एक भाग मानते हैं जिसे बाद में इससे अलग कर दिया गया।

इसे शास्त्रीय के नाम से इसलिए पुकारा जाता है क्योंकि :– (i) संगठन के क्रमबद्ध विश्लेषण पर आधारित यह सर्वप्रथम सिद्धान्त है। (ii) इसका प्रशासकीय सिद्धान्त के क्षेत्र में वर्चस्व है। (iii) यह प्रशासकीय साहित्य में सर्वथा स्थापित और सामान्यतः स्वीकार्य सिद्धान्त है।

यह सिद्धान्त रचना तथा योजना का एक औपचारिक ढांचा है। इसके अनुसार संगठन सिद्धान्तों का ऐसा समूह है जिसके आधार पर मनोनीत उद्देश्य या काग्र के अनुरूप आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए योजना बनायी जा सकती है और फिर उसके अनुसार कार्य के लिए योग्य एवं क्षमतापूर्ण व्यक्तियों की नियुक्ति की जा सकती है।

शास्त्रीय उपागम दो धारणाओं पर आधारित है : (i) संगठन के मौलिक सिद्धान्त इतने सर्वविदित हैं कि किसी प्रकार के प्रयोजन अथवा कार्य की आवश्यकताओं के अनुरूप योजना बनाना विशेषज्ञों के लिए संभव है, (ii) कर्मचारियों की नियुक्ति करने से पहले संगठन की योजना पर विचार किया जाना चाहिए।

गुलिक ने प्रशासनिक प्रक्रियाओं में पोस्डकोर्ब शब्द का विशेष रूप से प्रयोग किया है। उन्होंने कहा कि नीति क्रियान्वयन के लिए संरचना की आवश्कता है। पोस्टकार्ब के रूप में कार्यपालिका के कार्यों को स्पष्ट करने के पश्चात् संगठन के उन सिद्धान्तों की खोज करने के प्रयासों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया जिनके आधार पर संरचना की जा सके।

इस दृष्टि से उर्विक ने संगठन के 8 सिद्धान्तों तथा गुलिक ने 10 सिद्धान्तों का उल्लेख किया। उर्विक ने सभी संगठनों में क्रियान्वयन योग्य जो 8 सिद्धान्त बतलाये हैं उनमें (i) उद्देश्य का सिद्धान्त, (ii) अनुरूपता का सिद्धान्त, (iii) उत्तरदायित्व का सिद्धान्त, (iv) व्याख्या का सिद्धान्त, (v) नियन्त्रण के क्षेत्र का सिद्धान्त, (vi) विशेषीकरण का सिद्धान्त, (vii) समन्वय का सिद्धान्त (viii) परिभाषा या निर्धारण का सिद्धान्त आदि शामिल हैं

जिनका वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक एलीमेंटस ऑफ एडमिनिस्टेशन में किया है।

जापान में जन्में गुलिक लोक प्रशासन संस्थान, न्यूयार्क के अध्यक्ष रहे उन्हें सामान्य प्रशासन के अतिरिक्त सैनिक और औद्योगिक प्रशासन का ज्ञान भी था इसलिए संगठन के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिनमें सूत्र तथा स्टाफ सिद्धान्त भी शामिल थे। गुलिक ने कार्यपालिका के कार्यों में पोस्डकोर्ब को शामिल किया।

गुलिक द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में : (i) कार्य विभाजन या विशेषीकरण, (ii) विभागीय संगठनों के आधार, (iii) प्रत्यायोजन, (iv) सोद्देश्य समन्वय, (v) समितियों के अंतर्गत समन्वय, (vi) विकेन्द्रीकरण, (vii) आदेश की एकता, (viii) स्टाफ तथा सूत्र, (ix) पदसोपान द्वारा समन्वय, (x) नियन्त्रण का क्षेत्र आदि शामिल हैं।

शास्त्रीय उपागम में फेयोल का योगदान :– फेयोल ने प्रबन्ध के सामान्य सिद्धान्त का सम्पादन किया है। उन्होंने उच्च प्रबन्ध एवं प्रशासन के क्षेत्र में आधारभूत दर्शन एवं दृष्टिकोण को जन्म दिया। वह पहले व्यक्ति थे जिसने प्रबन्ध की सर्वव्यापकता की बात कही और सभी प्रकार के औद्योगिक, वाणिज्यिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और शैक्षणिक उपक्रमों के संचालन में प्रबन्ध की भूमिका को स्पष्ट किया। उन्होंने फ्रांस में प्रशासनिक अध्ययन केन्द्र की स्थापना की। उन्हें धातु कर्म के क्षेत्र में शोध के लिए 1921 में नोबेल पुरस्कार दिया गया।

फेयोल ने औद्योगिक क्रियाओं का वर्गीकरण किया जिनमें मुख्यतया : (i) तकनीकी क्रियाएँ (ii) वाणिज्यिक क्रियाएँ (iii) वित्तीय क्रियाएँ (iv) सुरक्षात्मक क्रियाएँ (v) लेखांकन क्रियाएँ और (vi) प्रशासनिक क्रियाएँ शामिल थी। प्रशासनिक क्रियाओं को उसने प्रशासन के तत्व के नाम से पुकारा जिनमें पाँच तत्व शामिल हैं: (i) नियोजन (ii) संगठन (iii) आदेश देना (iv) समन्वय (v) नियन्त्रण।

फेयोल ने उपरोक्त वर्णित क्रियाओं का वहन करने वाले प्रशासकों में शारीरिक, मानसिक, नैतिक, शैक्षणिक, तकनीकी गुण और अनुभव अवश्य होने चाहिए।

हैनरी फेयोल ने अपनी पुस्तक 'जनरल एण्ड इन्डस्ट्रियल एडमिनिस्टेशन' में 1916 ई0 प्रबंध के 14 सामान्य सिद्धांतों की विस्तृत रूप से व्याख्या की है। उनके अनुसार किसी भी औद्योगिक संस्थान का प्रबंध करने हेतु प्रबंधकों को कुछ सामान्य आधारभूत सिद्धान्तों का ज्ञान होना आवश्यक है यह सिद्धान्त लोचपूर्ण है जिनको किसी भी स्थिति में लागू किया जा सकता है। ये सिद्धान्त (i) कार्य का विभाजन, (ii) अधिकार एवं उत्तरदायित्व, (iii) अनुशासन, (iv) आदेश की एकता, (v) निर्देश की एकरूपता, (vi) व्यक्ति हित की तुलना में सामान्य हित को महत्त्व, (vii) कर्मचारियों का पारिश्रमिक, (viii) केन्द्रीयकरण, (ix) सोपान श्रृंखला, (x) व्यवस्था, (xi) समता, (xii) कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थायित्व, (xiii) पहलपन, (xiv) सहयोग की भावना आदि हैं।

फेयोल ने प्रबन्ध के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में प्रशिक्षण देने पर बल दिया। उनके अनुसार प्रत्येक उपक्रम के कर्मचारियों में विभिन्न प्रबन्धकीय कार्य करने की योग्यता होनी चाहिए जिन्हें विकसित करने के लिए प्रबन्ध के विषय को शैक्षणिक और व्यवसायिक संस्थाओं में पढ़ाया जाए।

डेल ने भी इस उपागम के प्रमुख सिद्धान्तों की गणना कह है जिनमें (i) उद्देश्य का सिद्धान्त, (ii) समन्वय का सिद्धान्त, (iii) विशिष्टीकरण का सिद्धान्त, (iv) निर्देश का सिद्धान्त, (v) आदेश की एकता का सिद्धान्त, (vi) अधिकार एवं दायित्व का सिद्धान्त, (vii) प्रत्यायोजन का सिद्धान्त, (viii) नियन्त्रण के विस्तार का सिद्धान्त, एवं (ix) सन्तुलन का सिद्धान्त आदि शामिल हैं।

मैसी ने इस विचारधारा के जिन सिद्धान्तों की चर्चा की है उनमें (i) आदेश की एकता, (ii) अपवाद का सिद्धान्त, (iii) नियंत्रण का विस्तार, (iv) स्केलर सिद्धान्त, (v) विभागीयकरण, एवं (vi) विकेन्द्रीकरण शामिल हैं।

पुरातन उपागम से सम्बन्धित एफ0 डब्ल्यू टैलर और मेक्स वेबर के विचार अलग अध्यायों में दिए गए हैं।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 'संगठन' शब्द का मोटे तौर पर दो विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। (i) 'संगठन' का प्रयोग एक प्रक्रिया के रूप में किया जाता है। परम्परावादी विचारधारा को मानने वाले विद्वान्, संगठन के उपकरण को इसी अर्थ में प्रयोग करते हैं। (ii) 'संगठन' का प्रयोग एक संयोजन (Association) जो संगठन की प्रक्रिया का परिणाम है, के रूप में किया जाता है। आधुनिक विचारधारा 'संगठन' के दोनों अर्थों को स्वीकार करती हुई आगे बढ़ती है।

परम्परावादी उपागम में क्रमबद्ध रूप से सर्वप्रथम काम करने वाले विद्वान् मूने एवं रेली माने जाते हैं जिन्होंने सन् 1931 में अपने बहुमूल्य ग्रन्थ 'ऑनवर्ड इन्डस्ट्री' का प्रकाशन किया। इसके प्रकाशन के बाद दो प्रमुख पुस्तकें इस विचारधारा के अनुयायी विद्वानों द्वारा लिखी गई। ई0 एफ0 एल0 ब्रेच (E.F.L. Brech) के द्वारा 'आर्गेनाइजेशन' के नाम से एक पुस्तक लिखी गई जो सन् 1957 के द्वारा 'आर्गेनाइजेशन' के नाम से एक पुस्तक लिखी गई जो सन् 1957 में प्रकाशित हुई और दूसरी पुस्तक अगले वर्ष सन् 1958 में ऐलन (Allen) के द्वारा लिखी गई जिसे 'मनेजमैंट ऑफ आर्गेनाइजेशन' के नाम से जाना जाता है।

संगठन की शास्त्रीय उपागम औपचारिक संगठन की संरचना का अध्ययन करती है। संक्षप मे यह कहा जा सकता है कि इस उपागम के अनुसार किसी भी संगठन की नींव चार स्तम्भों पर आधारित रहती है। जो इस प्रकार हैं–

(i) **श्रम का विभाजन (Division of Labour)** यह इस उपागम का प्रमुख आधार स्तम्भ माना जाता है तथा अन्य निम्न वर्णित स्तम्भ भी परोक्ष रूप में श्रम विभाजन से उत्पन्न होते हैं।

(ii) **सौपानिक एवं क्रियात्मक प्रक्रिया (Scalar and Functional Process)** सौपनिक प्रक्रिया के अन्तर्गत संगठन का शीर्षवृत अध्ययन किया जाता है। इसमें आदेश की श्रृंखला, अधिकार एवं दायित्व का प्रत्यायोजन, आदेश की एकता तथा प्रतिवेदन प्रेषित करने का दायित्व जैसी महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश होता है।

क्रियात्मक प्रक्रिया के अन्तर्गत संगठन के क्षैतिज विकास का अध्ययन किया जाता है। इसमें संगठन का विशिष्टीकरण के आधार पर विभाजन, रेखीय तथा कर्मचारी संगठन का स्वरूप आदि विषय सम्मिलित किये जाते हैं।

(iii) **संरचना (Structure)** इस स्तम्भ में विभिन्न क्रियायों के मध्य तर्कसंगत सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है जिससे कि उपक्रम के उद्देश्यों को कुशलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके। वैसे तो परम्परावादी विचारधारा के अनुसार सामान्यतः रेखा एवं कर्मचारी दो ही प्रमुख संगठन संरचनाएँ भी इसमें सम्मिलित कर ली जाती हैं।

(iv) **नियन्त्रण का क्षेत्र (Span of Control)** इस संकल्पना का सम्बन्ध इस बात से है कि एक प्रबन्धक कितने अधीनस्थों के कार्यों का प्रभावशाली रूप से निरीक्षण कर सकता है। ग्रेकुनाज (Gracunas) ने एक गणित का सिद्धान्त प्रतिपारित किया है जो इस संकल्पना का गहराई से विवेचन करता है यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि नियन्त्रण के क्षेत्र के विस्तृत होने की परिस्थिति में संगठन की संरचना सपाट अथवा चपटी (Flat) हो जाती है तथा दूसरी ओर नियन्त्रण क्षेत्र सीमित होने पर संगठन संरचना लम्बी अथवा दीर्घ (Tall) हो जाती है। इस प्रकार नियन्त्रण क्षेत्र की संकल्पना (Concept) मानव सम्बन्धों की जलिता तथा क्रियात्मक अर्न्तसम्बन्धों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई है।

मान्यताएँ (Assumptions)

यांत्रिक सिद्धान्त की निम्नलिखित प्रमुख मान्यतायें हैं :–

(i) इस उपागम के समर्थक संगठन की संरचना पर सर्वाधिक बल देते हैं। इनकी मान्यता है कि संगठन की

समस्त समस्याएँ इसकी संरचना में जन्म लेती हैं, अतः वैज्ञानिक आधार पर संगठन की संरचना होनी चाहिए।

(ii) इसकी दूसरी मान्यता यह है कि संगठन के कतिपय निश्चित सिद्धान्त होते हैं। इसके समर्थकों ने संगठन के सिद्धान्तों को विकसित करने में सर्वाधिक रूचि ली है।

(iii) निश्चित सिद्धान्तों को अपनाकर किसी भी संगठन में अधिकतम कुशलता तथा मितव्ययता का स्तर पाया जा सकता है। यह उपागम प्रशासन को एक तकनीकी समस्या मानकर अपना सारा ध्यान कुशलता पर केन्द्रित करता है।

(iv) इसके समर्थक यह भी कहते हैं कि लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में कोई भेद नहीं है बल्कि सभी प्रशासन एक जैसे होते हैं, अतः सरकारी या गैर सरकारी प्रशासन का भेद अवास्तविक है बल्कि मूल समस्या तो सभी संगठनों में कुशलता प्राप्त करना है।

(v) यह उपागम संगठन में कार्यरत कार्मिकों तथा उनके दायित्वों को पृथक् रूप से आँकता है।

(vi) इसकी यह भी मान्यता है कि कानून, नियम, प्रक्रिया, ढाँचा तथा नियंत्रण प्रणाली ही प्रशासन में निर्णायक भूमिका निभाती हैं।

(vii) संगठन तथा इसकी विभिन्न इकाइयों के मध्य अधिकतम समन्वय स्थापित कराना इस उपागम की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

(viii) इसके अनुसार प्रत्येक प्रशासनिक संगठन एक औपचारिक ढाँचा है जो पूर्व निर्धारित नियमों, सिद्धान्तों, कानूनों, कार्य प्रक्रियाओं के अनुसार संचालित होता है तथा प्रशासनिक संरचना एवं इसके अन्य अंग चार्ट एवं नियमावली के द्वारा स्पष्ट किए जा सकते हैं।

(ix) यह संगठन के कार्यकरण, संरचना तथा सिद्धान्तों का बाह्य वातावरण तथा आन्तरिक स्तर पर मानवीय व्यवहार से अछूता मानता है।

(x) यह प्रभुत्व, उत्तरदायित्व और प्रत्यायोजन के बारे में स्पष्ट सोच प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त शास्त्रीय उपागम की छः दार्शनिक विशेषताएँ भी मानी जाती हैं, जो इस प्रकार हैं :–

(i) आणविक – संगठन में कार्यरत व्यक्ति मात्र एक पुर्जा होता है वह अपने सहकर्मियों से पृथक् होता है। आणविक विशेषता सजीव तथा निर्जीव संरचना में भेद नहीं करती है।

(ii) यांत्रिक – यह संगठन को एक मशीन मानता है, अतः संगठनात्मक व्यवहार को कोई महत्त्व नहीं देता है।

(iii) गतिहीनता – यह उपागम गतिशील नहीं है, इसीलिए परम्परागत दृष्टिकोण कहलाता है। वैसे भी यह संगठन को जीवन्त उपक्रम में नहीं देखता बल्कि जड़ संगठन के रूप में आँकता है।

(iv) स्वैच्छिक – यह उपागम मानता है कि संगठन में कार्यरत कोई कार्मिक अपने साथियों तथा सामाजिक नियंत्रण से मुक्त रहता है।

(v) तार्किकता – संगठन में विवेकासम्मत ढंग या सैद्धान्तिक रीति से कार्य सम्पादित होना चाहिए।

(vi) अर्थ–प्रधानता – इसके अनुसार संगठन में कार्यरत कार्मिकों को आर्थिक प्रोत्साहनों के द्वारा अभिप्रेरित किया जा सकता है, गैर आर्थिक प्रोत्साहन महत्त्वहीन है।

परम्परावादी विचारधारा की आलोचना (Criticism of Classical Theory)

परम्परावादी सिद्धान्त के अन्तर्गत हमारा ध्यान मात्र औपचारिक संगठन तक ही सीमित रहता है। इस प्रकार परम्परावादी विचारधारा अपूर्ण दृष्टिगोचर होती है।

इसके अध्ययन से ऐसा स्पष्ट होता है कि यह सिद्धान्त मैकग्रेगर (McGregor) की 'एक्स' मान्यताओं पर आधारित है जबकि मैकग्रेगर की अन्य मान्यतायें जिन्हें 'वाई' मान्यताओं की संज्ञा प्रदान की गई है उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार यह विचारधारा अपूर्ण मान्यताओं पर आश्रित है।

परम्परावादी सिद्धान्त का तारतम्य मैक्स वेबर की 'शुद्ध नौकरशाही' की विचारधारा से दृष्टिगोचर होता है जिसके अन्तर्गत सभी चीजों का निर्णय लिखित नियमों के अनुसार होता है जहाँ सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय शिखर पर किये जाते हैं तथा उन निर्णयों को फिर आदेश की शृंखला द्वारा नीचे के स्तरों पर भेजा जाता है। इस प्रकार यह सिद्धान्त कट्टपंथी (Dogmatic) है।

इसके अतिरिक्त इसकी आलोचना निम्न आधारों पर भी की गई है :–

(i) हर्बर्ट साइमन ने यांत्रिक दृष्टिकोण के कुछ मान्य सिद्धान्तों विशेषकर कार्य विभाजन, आदेश की एकता तथा नियंत्रण के क्षेत्र की कटु आलोचना करते हुए इन्हें महज कहावतें (Proverbs, Myths, Clogans) माना है क्योंकि एक सिद्धान्त दूसरे को काटता है। साइमन के अनुसार 4 'पी' आधार पर होने वाला कार्य विभाजन, किस स्थान पर तथा किस विशेष स्थिति में, कौन से सिद्धान्त को बल प्रदान करेगा, यह स्पष्ट नहीं है। इसी प्रकार आदेश की एकता तथा सीमित नियंत्रण का क्षेत्र सम्भव नहीं है।

(ii) यह एक संकुचित दृष्टिकोण है जो संगठन और व्यक्ति में परस्पर सम्बद्धता नहीं बल्कि पृथकता की दृष्टि से देखता है।

(iii) यह उपागम 'संरचना' तथा 'औपचारिकता' पर बहुत बल देता है जबकि संगठन में मानवीय सम्बन्ध भी महत्त्वपूर्ण रहते हैं।

(iv) आलोचकों का मानना है कि यह दृष्टिकोण संगठन के चार्ट, नियमों, कार्यविधियों तथा कानूनों को प्राथमिक मानता है जबकि वास्तविकता में प्रत्येक संगठन केवल इन्हीं तथ्यों पर टिका नहीं रहता है और न ही सभी तथ्य चार्ट के द्वारा समझे जा सकते हैं।

(v) इसमें संगठन को एक 'बन्द इकाई या व्यवस्था (Closed System) के रूप में वर्णित किया जाता है जो बाह्य वातावरण से प्रभावित नहीं होता है जबकि वस्तुस्थिति यह है कि संगठन जीवन्त होते हैं जो बाहरी पर्यावरण को प्रभावित करते हैं और उससे प्रभावित भी होते हैं।

(vi) उर्विक तथा गुलिक ने प्रशासनिक सिद्धान्तों की सार्वभौमिकता की चर्चा की है जबकि वास्तविकता इससे भिन्न है क्योंकि प्रशासनिक सिद्धान्त केवल प्रशासनिक स्थिति को ठीक से समझने एवं उसका वर्णन करने में मापदण्ड मात्र है उनका परीक्षण तथा सर्वस्वीकार्यता सम्भव नहीं है।

(vii) यह उपागम संगठन में केवल 'आर्थिक प्रोत्साहनों' तथा औपचारिक आदेशों को महत्त्व देते हैं जबकि अनार्थिक प्रोत्साहन तथा अनौपचारिक सम्बन्धों की संगठन में कार्यकुशलता में निर्णायक भूमिका रहती है।

(viii) यह दृष्टिकोण 'प्रबंध' की ओर झुका हुआ है। इसमें प्रबंध तथा व्यक्तियों से सम्बन्धित अन्य संगठनात्मक समस्याओं को गौण माना गया है।

(ix) यह उपागम संगठन को एक मशीन या यंत्र की भाँति विश्लेषित करता है जबकि संगठन मारनवीय तत्त्वों से

युक्त है। मनुष्यों को पूर्जों की भाँति न तो समझा जा सकता हे न वे नर्जीव पुर्जे हो सकते हैं। मानवीय प्रेरणाएँ, सम्बन्ध तथा कार्यकुशलता अन्तरसम्बन्धित होती हैं।

(x) यह उपागम एक आदर्शात्मक सिद्धान्त (Normative Theory) है जो ''क्या होना चाहिए (What ought to be)'' पर बल देता है, न कि 'क्या है' (What is) का अध्ययन करता है अतः यह व्यवहारवाद के विपरीत है।

(xi) मार्च एवं साइमन ने अपनी पुस्तक 'आर्गेनाइजेशन' में स्पष्ट किया है कि इस उपागम में अभिप्रेरणा तत्त्वां की कमी थी, अर्न्तसंगठनात्मक (Intra Organizations) संघर्षों के निवारण की चिन्ता नहीं थी, सूचना प्रक्रिया पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया था तथा कार्यक्रम मूल्यांकन से सम्बन्धित समस्याओं का उत्तर भी इस उपागम के पास नहीं था।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि परम्परावादी विचारधारा व्यक्ति की अन्योन्यक्रिया, अनौपचारिक समूह (संगठन) तथा अर्न्तसंगठनात्मक अन्तर्द्वन्द्व जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों की उपेक्षा करती हैं। इस विचारधारा में समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान से व्यवहार विज्ञान के योगदान को विधिवत स्थान प्रदान नहीं किया गया है। यद्यपि यह विचारधारा संगठन की प्रकृति पर महत्त्वपूर्ण रूप से प्रकाश डालती है फिर भी इसकी उपयोगिता औपचारिक संगठन की संरचना तक अपने आपको सीमित रखने के कारण काफी कम हो जाती है।

परन्तु इन कमियों के बावजूद भी शास्त्रीय उपागम ने संगठन के सिद्धान्तों के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया जिनमें अधिकतर अब भी मान्य हैं।

2. वैज्ञानिक प्रबन्ध
(Scientific Management)

20वीं सदी में औद्योगिक प्रबन्ध पर वैज्ञानिक तरीके से शोध किए गए। इस समय प्रबन्ध आन्दोलन शुरू हुआ जब बड़े स्तर पर उत्पादन, बड़े उद्योग, कीमती मशीनरी का प्रयोग किया गया। इन सबके परिणामस्वरूप एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उभर कर सामने आया कि औद्योगिक सम्बन्ध को कैसे कायम रखा जाए? इस उद्देश्य के लिए प्रबन्ध की समस्याओं के समाधान हेतु विभिन्न पद्धतियों तथा सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया। इस प्रक्रिया में नए उपागम एवं विचारों ने जन्म लिया। अतः मुख्य जोर इस बात पर दिया गया कि प्रबन्ध के सिद्धान्तों को किस प्रकार समृद्ध बनाया जाए।

वैज्ञानिक प्रबन्ध की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि अमेरिका में औद्योगिक प्रबन्ध बुरी हालत में था। दोषपूर्ण कार्य पद्धति, उत्पादकता में कमी, मानवीय प्रयत्नों की व्यर्थता, व्यापक स्तर पर श्रम असंतोष आदि औद्योगिक बीमारी के मुख्य कारण थे। टेलर ने एक औद्योगिक चिकित्सक की भाँति इन कारणों की समीक्षा शुरू की।

टेलर ने औद्योगिक बीमारी के तीन मुख्य तत्वों की पहचान की जिनमें :–

(i) मजदूरों में डर एवं असुरक्षा की भावना की यदि उत्पादन बढ़ाया गया तो उन्हें काम से छुट्टी मिल सकती है।

(ii) प्रबन्ध व्यवस्था तथा तकनीकों का दोषपूर्ण एवं कमजोर, अमानवीय और अवैज्ञानिक होना, जिनके कारण उत्पादन प्रक्रिया में अतिआच्छादन (overlapping) और दोहरेपन का पाया जाना।

(iii) अकुशल कार्य पद्धति, अनुचित निर्देशन और अनियोजित पर्यवेक्षण का होना।

इन सभी समस्याओं का उत्तर देने के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक प्रबन्ध का सूत्रपात हुआ। इस समय कारखानों और उत्पान केन्द्रों में नियोजन का विकास नहीं हुआ था और सभी कुछ अनियोजित था। कार्य और कार्य पद्धति के प्रमाणीकरण का पूर्ण अभाव था। श्रमिक अपने कार्य करने के लिए पद्धति के चन में पूर्ण स्वतंत्र थे। यही नहीं, वे कार्य करने के लिए अपने उपकरण स्वयं लाते थे। उनके द्वारा अपनायी गई पद्धति सक्षम थी या नहीं और उपकरण उपयुक्त थे या नहीं, इसकी प्रबन्धकों को चिन्ता नहीं थी।

यद्यपि वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा को विकसित करने का श्रेय फ्रेडरिक विन्सलो टेलर के साथ चार्ल्स बैबेज, फ्रेडरिक हेल्से, हेनरी टॉने तथा हेनरी मैटकॉफ को भी जाता है तथापि टेलर (Taylor 1916) को ही इस विचारधारा का जनक माना जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि टेलर ने ही प्रबन्धकीय विज्ञान को एक व्यवस्थित विचारधारा के रूप में विकसित किया। प्रारम्भ में टेलर व्यवस्था को कार्य और बोनस प्रबन्ध के नाम से पुकारा जाता था परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य आयोग के समक्ष सुनवाई के दौरान अमेरिकन लुईस डी0 ब्रेन्डीस ने सर्वप्रथम (1910–11) में इसे वैज्ञानिक प्रबन्ध के नाम से सम्बोधित किया।

वैज्ञानिक प्रबन्ध की परिभाषाएँ (Definitions of Scientific Management)

वैज्ञानिक प्रबन्ध को अनेक विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। इनमें से कुछ प्रमुख विद्धानों की परिभाषायें नीचे दी जा रही हैं :–

एफ0 डब्ल्यू0 टेलर, ''वैज्ञानिक प्रबन्ध यह जानने की कला है कि आप व्यक्तियों से क्या कराना चाहते हैं तथा यह देखना कि वे उसको सुन्दर से सुन्दर तथा सस्ते से सस्ते ढंग से करें।''

एच0एस0 पर्सन के शब्दों में, ''वैज्ञानिक प्रबन्ध से तात्पर्य ऐसे संगठन तथा प्रणालियों से है जो उद्देश्ययुक्त अनुसंधान और विश्लेषण पर आधारित हो न कि मनमाने तौर पर अथवा परम्परागत त्रुटि सुधार प्रणाली के आधार पर।''

पियर्सन के अनुसार, ''वैज्ञानिक प्रबन्ध संगठन का वह स्वरूप एवं प्रक्रिया है जिसके सिद्धान्त वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा अन्वेषित कानूनों पर आधारित है। कार्य का वैज्ञानिक अध्ययन इसके अन्तर्गत किया जाता है, विविध विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों की श्रमिकों के ऊपर क्या प्रतिक्रिया होती है? इसे भी देखा जाता है।''

इस प्रकार वैज्ञानिक प्रबन्ध में आयोजन, अनुसंधान, विश्लेषण, प्रयोग, विवेक, तर्क आदि को प्रधानता देकर उपलब्ध साधनों का उचित प्रयोग करके उनमें समन्वय किया जाता है, कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वृद्धि की जाती है तथा अधिकतम उत्पादन का लक्ष्य पूरा किया जाता है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध अथवा शॉप प्रबन्ध का दर्शन (Philosophy of Scientific Management or Shop Management)

वैज्ञानिक प्रबन्ध एक कला है जिसके माध्यम से आप व्यक्तियों से क्या करवाना चाहते हैं और वे आपकी चाहत के अनुसार सर्वोत्तम मितव्ययी तरीके से उस कार्य को करे। इसमें वाणिज्य मामलों के प्रबन्धन में विज्ञान को लागू करने की बात कही गई है। यह तार्किकता, भविष्यवाणी, विशेषीकरण तथा तकनीकी समस्या पर जोर देता है। उत्पादन प्रक्रिया के प्रभावशाली तरीकों के तलाश पर बल दिया गया है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के उद्देश्य (Objectives of Scientific Mangaement)

वैज्ञानिक प्रबन्ध के उद्देश्य इस प्रकार हैं :–

(i) मानकीय (standardized) साधनों, यन्त्रों का प्रयोग करना।

(ii) शोध तथा पर्यवेक्षण द्वारा गुणवत्ता में सुधार करना।

(iii) लागत नियन्त्रण तकनीकों द्वारा कीमत में कमी करना।

(iv) मानवीय तथा पदार्थ संसाधनों की व्यर्थता को समाप्त करना।

(v) उचित कार्य के लिए उचित व्यक्ति।

(vi) श्रमिकों के लिए अच्छी मजदूरी।

इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उन्होंने निम्न तरीकों को अपनाया :–

(i) अंश दर प्रणाली (Piece rate system) (क) समय अध्ययन के द्वारा कार्य का अवलोकन तथा विश्लेषण और उसकी दर या मानक तय करना (ख) विभिन्न दर प्रणाली को अपनाना (ग) व्यक्ति को मजदूरी न कि पद (position) को।

(ii) दुकान प्रबन्ध अथवा प्रबन्ध का दर्शन (Shop Management) (क) कुशल प्रबन्ध के लिए उन्होंने उच्च मजदूरी दर और प्रति इकाई न्यूनतम उत्पादन लागत ताकि प्रबन्धकीय समस्याओं का कुशल और वैज्ञानिक रूप से समाधान हो सके। (ख) कार्य दशाओं का मानकीकरण (standardisation) करना (ग) मजदूरों को प्रशिक्षण (घ) प्रबन्ध तथा मजदूरों में सहयोग।

(iii) समय तथा गति अध्ययन पर बल (Emphasis on Time and Motion Study) इसमें (क) विशेष कार्य करने के लिए दक्ष व्यक्तियों की आवश्यकता (ख) प्रारम्भिक गति क्रम का अध्ययन (ग) प्रत्येक प्रारम्भिक गति में कितना समय लगता है, का पता करने के लिए स्टाप घड़ी का प्रयोग और कार्य के प्रत्येक तत्त्व को सम्पन्न करने के लिए शीघ्रतम विधि का चयन (घ) सभी गलत गतियों – धीमी गति, महत्त्वहीन गति – को निकालना (ड़) शीघ्रतम तथा सर्वोत्तम गतियों को एक क्रम में रखकर सर्वोत्तम यन्त्रों को भी छाँटना आदि शामिल हैं।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त (Principles of Scientific Management)

अपने 26 वर्षों के 30,000 प्रयोगों के अनुभवों के आधार पर टैलर ने चार सिद्धान्तों का विकास किया जिनमें :–

(1) कार्य के वास्तविक विज्ञान का विकास (Development of True Science of Work)

(2) श्रमिकों का वैज्ञानिक पद्धति से चयन तथा प्रशिक्षण (Scientific Selection and Training of Workers)

(3) (1) तथा (2) में अन्तप्रक्रिया स्थापित करना Interaction between (1) and (2)

(4) श्रमिकों और प्रबन्ध के मध्य सहयोग (Cooperation between workers and Management)

प्रथम सिद्धान्त की मान्यता यह है कि प्रत्येक श्रमिक के कार्य को एक विज्ञान में परिवर्तित किया जा सकता है इसके लिए (i) योग्य श्रमिकों द्वारा किए जाने वाले 'बड़े दैनिक कार्य' की तलाश (ii) अनुकूलतम परिस्थितियों की तलाश (iii) कार्य को उत्तम तरीके से करने के लिए नियमों का निर्माण (iv) अधिक उत्पादन करने वाले श्रमिक को अच्छी मजदूरी आदि बातों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

द्वितीय सिद्धान्त में केवल उन व्यक्तियों का चयन किया जाता है जो शारीरिक और बौद्धिक गुणों के धनी हों। इसके लिए उनके दृष्टिकोण, प्रकृति तथा कार्य निष्पादन आदि का अध्ययन किया जाता है। टेलर के अनुसार प्रत्येक श्रमिक मे संभावित क्षमताएँ हैं जिनका उचित प्रयोग करने के लिए उसे व्यवस्थित रूप से प्रशिक्षण दिया जाए। प्रबन्ध को चाहिए कि वह श्रमिक को अपने कार्य में आगे बढ़ने के अवसर प्रदान करे।

तृतीय सिद्धान्त में कहा गया है कि श्रमिक तो प्रबन्ध के साथ सहयोग करना चाहते है। परन्तु इसका विरोध प्रबन्ध की ओर से अधिक होता है। इसके लिए टेलर मानसिक क्रान्ति की बात करते हैं (i) जिसके तहत दोनों पक्ष एक महत्त्वपूर्ण तथ्य के रूप में अतिरिक्त (Surplus) के विभाजन से अपनी दृष्टि हटा लेते हैं और अपना ध्यान मिलकर अतिरिक्त के आकार को बढ़ाने के लिए लगाते हैं। (ii) वैज्ञानिक प्रबन्ध के अस्तित्व के लिए दृष्टिकोण में एक और परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। दोनों पक्षों को प्रतिष्ठान में सम्पादित किए गए समस्त कार्यों के सम्बन्ध में (पुरातन व्यक्तिगत निर्णय और धारणा चाहे श्रमिक या प्रबन्ध की हो) के स्थान पर सही वैज्ञानिक गवेषणा ओर ज्ञान को अत्यधिक आवश्यक मानना चाहिए।

टेलर ने इस प्रकार अतिरिक्त में वृद्धि की बात कही तथा प्रबन्ध एवं श्रमिक दोनों से अतिरिक्त के वितरण पर कलह न करने के लिए कहा। इसके लिए दोनों ही पक्षों के मानसिक दृष्टिकोण में क्रान्ति की आवश्यकता है। परन्तु विशेषकर प्रबन्ध के लिए यह अति आवश्यक है क्योंकि उसका उत्तरादायित्व अधिक होता है।

चतुर्थ सिद्धान्त के तहत टेलर ने प्रबन्ध को भी संगठन में कार्य निष्पादन के लिए समान रूप से उत्तरदायी ठहराया है जबकि रूढ़िवादी प्रबन्ध सारा उत्तरदायत्वि केवल श्रमिकों पर डालता है। कार्य का विभाजन प्रबन्ध तथा श्रमिकों के बीच परस्पर सहमति तथा आपसी निर्भरता पैदा करता है जिससे सहयोग निरन्तर एवं घनिष्ठ हो जाता है और सभी प्रकार के टकराव व हड़तालें समाप्त हो जाती हैं। टेलर के अनुसार प्रबन्ध को अतिरिक्त उत्तरदायित्व तथा कार्यभार वहन करना चाहिए जैसे नियोजन, संगठन, नियन्त्रण, विधि निर्धारण आदि।

सिद्धान्तों का दर्शन (Philosohy of Principles)

इन सिद्धान्तों के दर्शन को निम्न रूप में वर्णित किया जा सकता है :–

(i) विज्ञान, न कि काम चलाऊ तरीका (rule of thumb), (ii) मेल न कि मुटाव, (iii) सहयोग न कि व्यक्तिवाद

(iv) अधिकतम उत्पादन न कि सीमित उत्पादन, (v) कार्यकुशलता एवं समृद्धि को बढ़ावा।

प्रबन्ध की तंत्र व्यवस्था (Mechanisms of Management)

टेलर ने ऊपर वर्णित सिद्धान्तों की पालना करने के लिए तंत्र व्यवस्था को स्थापित किया जिसमें निम्न बातें शामिल हैं :–

(i) समय अध्ययन के लिए स्टाप घड़ी (ii) कार्यात्मक फोरमैनशिप (iii) सभी प्रयोग किए जाने वाले यन्त्रों, तकनीकों का मानकीकरण (iv) अधिक कुशलता के लिए बड़े दैनिक कार्य की योजना बनाना (v) समय बचत के लिए सलाइड नियम (vi) क्या करना है और किस प्रकार करना है, को रिकार्ड करने के लिए कार्यानुदेश पत्र (instruction cards) का प्रयोग करना। (vii) अच्छे उत्पादन के लिए बोनस व्यवस्था (viii) अपवाद का नियम जिसके तहत इनाम और सजा का प्रावधान (ix) आधुनिक लागत प्रणाली को प्रोत्साहन।

कार्यात्मक फोरमैनशिप (Functional Formanship)

टेलर ने सैनिक संगठन अथवा आदेश की एकता को छोड़कर कार्यात्मक फोरमैनशिप को अपनाया जिसमें उसने 8 पर्यवेक्षक निर्धारित किए हैं जिनसे श्रमिकों को आदेश लेने होंगे। इस प्रकार टेलर ने श्रमिकों के अतिरिक्त पर्यवेक्षकों में भी कार्य विभाजन किया। 4 पर्यवेक्षक योजना के लिए उत्तरदायी होंगे जिनमें गुट पर्यवेक्षक, मरम्मत पर्यवेक्षक, गति पर्यवेक्षक और निरीक्षक शामिल हैं। अन्य 4 पर्यवेक्षक क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होंगे जिनमें कार्य की व्यवस्था एवं मार्ग लिपिक, कार्यानुदेश पत्र लिपिक, समय और लगत लिपिक और कारखाना अनुशाक शामिल है। योजना से सम्बन्धित कार्य करने वालों को स्टाफ और क्रियान्वयन करने वालों को सूत्र कर्मचारी के नाम से पुकारा गया। इस प्रणाली के तहत पर्यवेक्षक को आसानी से प्रशिक्षण एवं विशेषीकरण प्रदान किया जा सकता है। टेलर ने फोरमैन के लिए कई योग्यताओं का वर्णन किया जैसे शिक्षा, तकनीकी ज्ञान, शक्ति एवं ऊर्जा, ईमानदारी, परख–शक्ति, अच्छा स्वास्थ्य आदि। परन्तु कार्यात्मक निर्देशन व्यवहार में प्रभावहीन सिद्ध हुआ और बाद में इसका परित्याग कर दिया गया।

अपवाद का सिद्धान्त (Principle of Exception) : टेलर ने कहा कि जो फैसले बार–बार लेने पड़ते हैं उन्हें दिनचर्या का रूप देकर अधीनस्थ कर्मचारियों को प्रत्यायोजित कर दिया जाए। केवल महत्त्वपूर्ण मामले ही पर्यवेक्षक को दिए जायें। इस प्रकार पर्यवेक्षक को केवल अपवाद पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए और विवरण आदि से सम्बन्धित कार्य अधीनस्थ कर्मचारियों को देने चाहिए।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध की आलोचना मुख्य रूप से व्यावसायिक संघों, श्रमिक नेताओं, प्रबन्धकों और व्यवहारवादियों द्वारा की गई जो इस प्रकार है :–

(i) व्यवसायिक संघ बोनस प्रणाली द्वारा उत्पादन बढ़ाने की पद्धति के खिलाफ थे।

(ii) टेलर ने श्रमिकों के किसी भी पक्ष की बात नहीं कि बल्कि मानवीय पहलू की बजाय मशीनी प्रक्रिया पर जोर दिया।

(iii) प्रबन्धकों ने भी इस सिद्धान्त की आलोचना की क्योंकि इससे पदोन्नति के अवसर अवरोध हो गए। इसके अतिरिक्त उन्होंने अंगूठा लगाने के नियम की निन्दा की। प्रबन्धकों की विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण हर स्थिति में दिए जाने का भी उन्होंने विरोध किया।

(iv) व्यवहारवादियों – मैरी पार्कर फोलेट, एल्टन मेयो, पीटर ड्रकर आदि ने भी टेलर की आलोचना इस आधार पर की उनका सिद्धान्त अव्यैक्तिक है। किसी कार्य योजना के निर्माण और क्रियान्वयन के बीच रेखा खींचना व्यवहारिक नहीं हो सकता।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी वैज्ञानिक प्रबन्ध के समर्थकों में श्रमिकों की संख्या सबसे अधिक थी। श्रमिक यह मानते थे कि उत्पादन लागम कम होने से उनकी मजदूरी में वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप उनके जीवन स्तर में उन्नति होगी। श्रमिकों के लिए निःशुल्क प्रशिक्षण की व्यवस्था होने से उनके व्यक्तित्व व क्षमता का पर्याप्त विकास हो सकेगा। उपयुक्त और स्वच्छ कार्य वातावरण से कार्य करने के प्रति उनकी रूचि बनी रहेगी। दूसरी तरफ उद्योगपतियों एवं नियोक्ताओं में भी फ्रेडरिक टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध में अनेक लाभ नजर आए। एक तरफ जहाँ उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार हुआ तो दूसरी तरफ प्रति इकाई वस्तु की उत्पादन लागत भी काफी कम हो गई। श्रमिकों द्वारा अधिकतम परिश्रम से उन्हें लाभी भी अधिक होने लगा। उपभोक्ताओं को भी इससे अतिशय लाभ हुआ। वस्तुओं की कीमतें कम होने से उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति में विकास हुआ। श्रेष्ठ किस्म की वस्तुएँ उपलब्ध होने लगीं और उनके रहन सहन में भी सुधार हुआ। हालांकि टेलर का कार्यकुशलता सम्बन्धी सिद्धान्त अमेरिका की समानतापूरक माँगों के साथ मेल नहीं खा सका, किन्तु उसे लुई डी0 ब्रेण्डिस जैसे आर्थिक राजनयिकों ने व्यापक आधार प्रदान किया और उसे थियोडोर रूजवेल्ट, वुडरो विल्सन, राबर्ट लाफालेट आदि विद्वानों द्वारा स्वीकार किया गया। धीरे–धीरे व्यापारिक और औद्योगिक क्षेत्र में प्रयुक्त इस व्यवस्था का समावेश अन्य क्षेत्रों में भी होने लगा तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध की समस्त धाराएँ अमेरिकी तकनीकी से जा मिलीं। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि फ्रेडरिक टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध ने एक आन्दोलन का रूप ले लिया। ऐसे परिवेश में जब भौतिक विज्ञान की उपलब्धियाँ विकसित हो रही थीं तब टेलरवाद ने औद्योगिक समस्याओं के समाधान हेतु उद्देश्यात्मक सिद्धान्तों के प्रयोग पर बल देकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया।

3. मानवीय सम्बन्ध उपागम
(Human Relations Approach)

मानवीय सम्बन्ध विचारधारा की उत्पत्ति शास्त्रीय उपागम के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुई जिसमें श्रमिक को मशीन के समान माना जाता था और मानवीय भावनाओं के लिए कोई जगह नहीं थी। वैसे तो 1913 में ह्यूगों मस्टवर्ग की पुस्तक 'मनोविज्ञान और औद्योगिक कार्यक्षमता' के प्रकाशन के साथ ही मानव सम्बन्धों का महत्त्व उजागर हो गया था, परन्तु इसके व्यवस्थित स्वरूप को 20वीं सदी के दशक माना जा सकता है। इसकी उत्पत्ति तथा विकास में 1929–30 की आर्थिक मन्दी, पूंजी आधारित उद्योगों में निरन्तर हानि, विज्ञान तथा तकनीकी क्षेत्र में नई खोज, टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध का विरोध, श्रम संगठनों का एकजुट होना आदि तत्त्व सहायक रहे। परिणामस्वरूप प्रबन्धकों ने संगठन में उत्पादन प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले मानवीय तथा मनोवैज्ञानिक कारकों को समझने को आवश्यक माना।

मानव सम्बन्ध उपागम के समर्थकों में रोथलिसबर्गर, विलियम जे0 डिक्सन, टी0एन0 व्हाइट, इ0 वरनर डब्ल्यू लायड, एल0 म0 हैण्डरसन, वाल्टर रादेनाव तथा ओलिवर शैलडन आदि प्रमुख हैं।

मानव सम्बन्ध का अर्थ (Meaning of Human Relations)

साधारण शब्दों में इनका अर्थ नियाक्ता तथा श्रमिकों के उन सम्बन्धों से है जो कानूनी मानकों द्वारा नियन्त्रित नहीं होते बल्कि नैतिक और मनोवैज्ञानिक तत्त्वों पर आधारित होते हैं। इनकी कुछ परिभाषायें इस प्रकार हैं :–

कीथ डेविस (Keith Davis) ''मानवीय सम्बन्ध, प्रबन्ध के क्षेत्र में, व्यक्तियों का कार्य स्थिति में ऐसा एकीकरण है जो उन्हें उत्पादक व सहकारिक रूप तथा आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक संतुष्टि के साथ कार्य करने को अभिप्रेरित करता है।''

रॉबर्ट साल्टनस्टाल (Robert Saltonstall) के शब्दों में ''कार्यरत व्यक्तियों का अध्ययन ही मानवीय सम्बन्ध है।''

जॉन एफ0 मी (John F. Mee) ने कहा है कि ''मानवीय सम्बन्ध वह साधन है जिसकी सहायता से कम्पनी एवं कम्रचारी दोनों ही उच्च मनोबल द्वारा अत्यधिक उत्पादन की प्रगति के लिए परस्पर सहयोग करते हैं, जो व्यवसाय का अन्तिम आर्थिक लक्ष्य होता है।''

जोसेफ एल0 मेसी (Joseph L. Massie) के अनुसार ''मानवीय सम्बन्ध अभिप्रेरण की प्रक्रिया है जो उद्देश्यों में सन्तुलन स्थापित करती है तथा जिसका लक्ष्य अधिकतम मानवीय सन्तष्टि प्राप्त करना एवं संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति में सहयोग करना होता है।''

मेयर (Maier) के अनुसार ''मानवीय सम्बन्ध व्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से व्यवहार करना है।''

मानव सम्बन्ध उपागम की विशेषताएँ (Characteristics of Human Relations Approach)

मानव सम्बन्ध उपागम की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं : (i) यह उपागम यह मानकर चलता है कि मानव एक मशीन या मशीन का कोई पुर्जा नहीं है अपितु यह सजीव, संवेदनशील तथा विचारवान प्राणी है जो समूह के नियमों से प्रभावित होता है। (ii) प्रत्येक संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के एकीकरण, सामूहिकीकरण तथा अन्तरसम्बन्धों की

प्रक्रिया ही मानव सम्बन्ध है जो प्रत्येक संगठन में विद्यमान होते हैं। (iii) संगठन में कार्यरत मनुष्य 'सामाकि मनुष्य' है जो समूह के द्वारा निर्धारित मापदण्डों तथा प्रतिमानों से प्रभावित होता है तथा स्वयं ही समस्याओं के कारण संगठन की कार्यप्रणाली को प्रभावित करता है। (iv) यह उपागम मानता है कि नियोक्ता एवं कर्मचारियों के मध्य सम्बन्ध हमेशा कानूनों या नियमों से निर्धारित एवं संचालित नहीं होते बल्कि नैतिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों से सम्बन्धित होते हैं। (v) मानव सम्बन्ध विचारधारा, 'औद्योगिक सम्बन्धों' की पर्याय नहीं है बल्कि यह संगठन में कार्यरत कर्मचारियों को आदर्शोन्मुखी बनाने के लिए ठोस पद्धतियों की खोज से सम्बन्धित है। (vi) यह उपागम व्यक्तियों तथा उनकी अभिप्रेरणाओं पर बल देता है ताकि संगठन के समस्त संसाधनों का सदुपयोग हो सके।

यांत्रिक एवं मानव सम्बन्ध उपागम में अन्तर Difference between Classical and Human Relations Approach :

	परम्परागत (शास्त्रीय उपागम)	मानव सम्बन्ध उपागम
(i)	संगठन की औपचारिक संरचना पर बल देता है।	अनौपचारिक संगठनों पर बल देता है।
(ii)	संगठन को तार्किक एवं अव्यक्तिगत व्यवस्था मानता है।	संगठन को भावनात्मक तथा सामाजिक व्यवस्था मानता है।
(iii)	श्रमिकों को 'आर्थिक मानव' मानता है।	श्रमिकों को ''सामाजिक मानव'' मानता है।
(iv)	संगठन के मशीन तथा कार्य प्रणाली पक्ष पर जोर देता है।	संगठन के सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पक्ष पर जोर देता है।
(v)	प्रबन्ध द्वारा निर्मित कानूनों तथा विनियमों को संगठनात्मक व्यवहार का आधार मानता है।	भावनाओं, अभिवृत्तियों तथा इच्छाओं को संगठनात्मक व्यवहार का आधार मानता है।
(vi)	श्रमिकों को एकरूपी (Homogernous) मानता है	श्रमिकों को विविधता से परिपूर्ण (Heterogenous) मानता है।
(vii)	'निरंकुश पर्यवेक्षण' शैली का समर्थक है।	'लोकतांत्रिक पर्यवेक्षण' शैली का समर्थक है।
(viii)	मनुष्य को आणविक रूप में देखता है।	मनुष्य को 'सामाजिक' रूप में देखता है।
(ix)	सिद्धान्तों पर आधारित संगठन की सरंचना को कार्यदक्षता का आधार मानता है।	श्रमिकों की संतुष्टि तथा मानवीय सम्बन्धों की संगठनात्मक कार्यक्षमता को आधार मानता है।
(x)	कार्य के 'भौतिक पर्यावरण' पर बल देता है।	कार्य के 'सामाजिक पर्यावरण' पर बल देता है।

मानव सम्बन्ध पद्धति पर जार्ज एल्टन मेयो के विचार (Views of Elton Mayo on Human Relations Approach)

आस्ट्रेलिया में जन्मे मेयो वहाँ मनोविज्ञान के प्रोफेसर रहने के बाद अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट स्कूल ऑफ बिजनेस में नियुक्त हुए जहाँ 1926 से 1947 तक औद्योगिक अनुसंधान कार्यक्रम के तहत काफी प्रयोग किए। उन्हें आधुनिक मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्रीय औद्योगिक शोध का मूल जन्मदाता कहा जाता है क्योंकि उन्होंने मानव अभिप्रेरणा, समूह प्रतिक्रिया, अनौपचारिक संगठन, श्रमिकों की भावनाओं एवं अभिवृत्तियों, कार्य के सामाजिक घटकों आदि के बारे में महत्वपूर्ण प्रयोग किए जिनके परिणामस्वरूप मानवीय सम्बन्ध आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला। उनके शोध जिन्हें हॉथोर्न प्रयोग के नाम से जाना जाता है, को जोसेफ एल0 मेसी ने मानवीय सम्बन्ध आन्दोलन की आधारशिला बताया है।

मेयो ने संगठन की कार्यप्रणाली को समझने के लिए मानव प्रकृति और उनकी अन्तः प्रक्रिया पर बल दिया। उनके अनुसार उद्योगपति और श्रमिकों के बीच सम्बन्ध कानूनी नियमों से नियन्त्रित नहीं होते बल्कि नैतिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों से नियमित होते हैं।

इस प्रकार मेयो ने कारखाने के श्रमिकों के विचारों को प्रेषित (Ideological Orientation) करने के लिए मानवीय सम्बन्धों पर आधारित ठोस पद्धति का निर्माण करने का प्रयत्न किया। इस प्रक्रिया में उन्होंने व्यक्तियों तथा उनकी अभिप्रेरणा पर बल दिया जो शास्त्रीय पद्धति से सर्वथा भिन्न था।

एल्टन मेयो के मुख्य प्रयोग (Major Experiments of Elton Mayo)

1. प्रथम शोध (First Enquiry), 1923 हार्वर्ड विश्वविद्यालय में कार्यभार संभालने के बाद मेयो का प्रथम प्रयोग फिलोडेलफिया के निकट एक कपड़ा मिल में किया गया। यहाँ के प्रबन्धकों ने श्रमिकों को अच्छी सुविधाएं दे रखी थी फिर भी इसकी म्यूल कताई खण्ड में श्रम आवर्तन (labour-turnover) अधिक था और उत्पादन घट रहा था। श्रमिकों को वित्तीय प्रोत्साहन देने के उपरान्त भी समस्या बरकरार थी तो यह मामला मेयो को सौपा गया। हार्वर्ड टीम ने हर दृष्टि से समस्या का विश्लेषण करने के बाद पाया कि लगभग श्रमिक पैरों के दर्द से पीड़ित थे जो उन्हें एक लम्बे गलियारे में बार बार ऊपर नीचे जाने से हुआ। आपस में बातचीत न होने के कारण श्रमिक थकान एवं नीरसता से ग्रस्त थे और वे मिल के अध्यक्ष, जो सेना में कर्नल थे, को अपनी समस्या नहीं बता पाये। टीम को ये सारी बातें वहाँ कार्यरत नर्स से पता चली।

इस पर मेयो ने 10 मिनट का विश्राम का प्रावधान किया और निर्धारित उत्पादन से अधिक उत्पादन करने वाले श्रमिक के लिए बोनस की व्यवस्था की। इस प्रयोग से पर्यवेक्षकों तथा श्रमिकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और उनके उत्साह तथा उत्पादन में वृद्धि हुई। इससे उनमें आपस में विचार विमर्श शुरू हुआ और बेचैनी समाप्त हो गई और एक नई चेतना पैदा हुई।

2. हाथोर्न प्रयोग (Hawthrone Experiment) ये प्रयोग अमेरिका की वेस्टर्न इलैक्ट्रिक कम्पनी के शिकागो शहर के निकअ स्थित हॉथोर्न संयन्त्र (Plant) में किए गए जो 1924 से 1932 तक चले। इनका मख्य उद्देश्य उन्नत कार्यदशाओं के परिणामस्वरूप कर्मचारियों के व्यवहार एवं प्रवृत्तियों में होने वाले परिवर्तन को जानना था और श्रमिकों की कार्यकुशलता एवं उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्वों का पता लगाना था। ये प्रयोग इस प्रकार थेः— **(i) महान प्रबोधन प्रयोग (The Great Illumination Experiment-1924-27)** इसका मुख्य उद्देश्य प्रकाश व्यवस्था में परिवर्तन करने से श्रमिक की उत्पादन क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना था। इसलिए राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की राष्ट्रीय शोध परिषद तथा हॉर्थोन प्लांट के निरीक्षक जार्ज पेनॉक तथा अन्य सहयोगियों ने प्रबोधन और श्रमिक कार्यक्षमता के मध्य सही सम्बन्ध का परीक्षण 1924 में शुरू किया जिसे महान प्रबोधन (Great Illumination) के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत महिला मजदूरों के दो समूह बनाए गए तथा उन्हें समान कार्य दिया गया। यह प्रयोग प्रकाश के विभिन्न स्तरों पर उत्पादन मात्रा का अध्ययन करने के लिए किया गया। शुरू में दोनों कमरों में प्रकष तथा अन्य सुविधाएं स्थिर रखी गई फिर धीरे–धीरे इसे कम ज्यादा किया गया। 18 महीने तक अध्ययन करने के बाद पता चला कि दोनों समूहों की उत्पादकता में वृद्धि हुई।

परिणामस्वरूप यह प्रयोग छोड़ना पड़ा और समूह प्रोत्साहन के स्थान पर प्रति व्यक्ति दर योजना शुरू की गई परन्तु उत्पादन लगातार बढ़ता गया।

इसी प्रकार कार्य घण्टों, प्रति सप्ताह कार्य अवधि, चाय व जलपान की सुविधा समाप्त करके देखा गया तो कुछ दिन तक तो उत्पादन घटा परन्तु शीघ्र ही इसका स्तर बहुत अधिक बढ़ गया। इससे स्पष्ट हुआ कि प्रकाश व्यवस्था, प्रोत्साहन योजन, विश्राम के क्षण आदि उत्पादन से सीधे रूप में सम्बन्धित नहीं थे और महिला मजदूरों की

प्रवृत्ति (Attitude) इसके लिए उत्तरदायी है उन्होंने मिलकर एक सामाजिक समूह बना लिया और कार्य में अपनी भागदारी बढ़ा दी।

(ii) रिले असेम्बली टैस्ट रूम (Relay Assembly Test Room) रिले असेम्बली टैस्ट रूम प्रयोग प्रथम अध्ययन के दोषों की जाँच करने के लिए किया गया था। हॉथोर्न प्रयोग समूह में ये प्रयोग अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं जो अप्रैल, 1927 से अगस्त 1932 तक चलते रहे तथा इनके निष्कर्षों ने प्रबन्धकों को गहन रूप से प्रभावित किया। इस अध्ययन के अन्तर्गत छः छः लड़कियों के दो समूह बनाये गये। इन लड़कियों को एक पृथक् कमरे में बिठा कर टेलीफोन के छोटे छोटे उपकरणों को जोड़ने का काम करवाया गया। ये लड़कियाँ कार्यकुशलता एवं अनुभव की दृष्टि से औसत दर्जे की थीं। इनके कार्य की देखरेख के लिए एक पर्यवेक्षक की नियुक्ति की गई थी। इस पर्यवेक्षक का कर्त्तव्य केवल समूह के कार्य का निरीक्षण करना ही नहीं ाि, वरन् समूह के साथ सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाये रखना भी था। लड़कियों को स्वाभाविक रूप से कर्ा करने को कहा गया था तथा उन्हें कार्यस्थल की व्यवस्था पर स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त करने की अनुमति भी थी। लड़कियों की समय समय पर डाक्टरी जाँच भी की जाती थी। पर्यवेक्षक कार्य कक्ष के तापमान एवं आर्द्रता के अतिरिक्त कार्य की विभिन्न घटनाओं व लड़कियों के वार्तालाप, पूर्व रात्रि की नींद आदि का पूरा लेखा जोखा रखता था। इस अध्ययन के प्रथम 2 वर्षों में 13 प्रयोग की अवधियाँ रखी गयी थीं।

इस प्रयोग के दौरान कार्य दिवसों, कार्य के घण्टों, कार्यानुसार मजदूरी, विश्राम की आवृत्ति एवं समय आदि में समय समय पर परिवर्तन किये गये। कम्पनी की ओर से चार, काफी व भोजन की सुविधा भी दी गई। इन सुविधाओं में समय समय पर कमी वृद्धि भी की गई थी। इन प्रयोगों का उद्देश्य यह पता लगाना था कि कार्य की दशाएं उत्पादन को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। इन प्रयोगों से मेयो और उसके साथी इन निष्कर्षों पर पहुँचे– (i) कर्मचारियों की कार्यक्षमता पर भौतिक वातावरण एवं सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध उत्पादन वृद्धि में सहायक होते हैं। (ii) कार्य का स्वतंत्र वातावरण एवं सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध उत्पादन वृद्धि में सहायक होते है। (iii) अनौपचारिक संगठन व सामाजिक सम्बन्ध औपचारिक संगठन के समान ही महत्त्वपूर्ण हैं तथा कुछ परिस्थितियों में तो इनका महत्त्व भौतिक वातावरण व ऊँचे वेतनों से भी ज्यादा है। (iv) कार्य की दशाओं व उत्पादन के मध्य किसी प्रकार का कोई सह सम्बन्ध (Correlation) नहीं पाया गया।

इस प्रकार इन प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया था कि उत्पादन वृद्धि में भौतिक एवं तकनीकी तत्वों की भूमिका कोई विशेष महत्त्व नहीं रखती हे, बल्कि इनकी तुलना में मानवीय सम्बन्धों एवं व्यवहार का उत्पादन क्षमता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस अध्ययन में सौहार्दपूर्ण मानवीय सम्बन्धों के कारण उत्पादन में 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी।

(iii) द्वितीय रिले एसेम्बली समूह (Second Relay Assembly Group) यह प्रयोग कुछ तत्त्वों की कर्मचारियों के समूह पर पुनः जाँच करने के लिए किया गया था। इस प्रयोग में प्रेरणाओं के प्रभाव की जाँच करने के लिए पाँच अनुभवी रिले कर्मचारियों को चुना गया तथा उन्हें वहीं पर कार्य करने के लिए रखा गया जहाँ वे पहले से कार्य कर रहे थे। उन्हें प्रेरणा के रूप में समूह बोनस दिया गया। ये प्रयोग नवम्बर 1928 में शुरू किये गये तथा नौ सप्ताह तक चलते रहे। इस अध्ययन, से यह स्पष्ट हुआ कि जहाँ एक ओर प्रति कर्मचारी उत्पादन दर में वृद्धि हुई वहीं दूसरी ओर कुल उत्पादन में 13% की वृद्धि भी हुई।

(iv) माइका स्प्लिटिंग समूह (The Mica Spliting Group) यह अध्ययन द्वितीय रिले एसेम्बली समूह जाँच के पूर्व ही प्रारम्भ कर दिया गया था और इसके बाद तक चलता रहा। इस अध्ययन में भी पाँच लड़कियों के समूह को एक दूसरे जाँच कक्ष में रखा गया। दो वर्षों में कार्य की दशाओं में पाँच बार परिवर्तन किया गया। उनसे कभी कभी अधिक समय (Over Time) भी कार्य करवाया जाता था। भुगतान की पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। इस

समूह में जिन लड़कियों को चुना गया वे मानसिक एवं सामाजिक रूप से एक दूसरे से परिचित नहीं थीं। अर्थात् यह सम्बद्ध समूह (Cohesive Group) नहीं था। इस अध्ययन में यह पाया गया कि कार्य करते करते व लड़कियाँ एक सामाजिक समूह में बदल गयी थी। कार्य वातावरण में स्वतंत्रता के कारण उनकी संतुष्टि में वृद्धि हुई तथा उत्पादन बढ़ा। उनमें अनौपचारिक व्यवहार के कारण आपसी सहयोग, अन्तःक्रियाओं एवं सामाजिक सम्बन्धों में वृद्धि हुई। एल्टन मेयो ने इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि एक बड़ी सीमा तक कार्य संतुष्टि समूह के अनौपचारिक सामाजिक प्रारूप पर निर्भर करती है। जहाँ एक ओर सहयोग एवं उत्पादन अपने को महत्त्वपूर्ण मानने की भावना के कारण बढ़ता है, वहीं दूसरी ओर भौतिक कार्य दशाओं का प्रभाव अत्यन्त सीमित होता है।''

(v) मानवीय प्रवृत्तियाँ और भावनाएँ प्रयोग, 1928–31 (Human Attitudes and Sentiments Experiments) अथवा साक्षात्कार अध्ययन (Interveiwing Studies)

यह अध्ययन मनोवैज्ञानिक प्रकृति का था तथा प्रबन्ध व पर्यवेक्षण के प्रति कर्मचारियों की अभिवृत्तियों को जानने के उद्देश्य से किया गयाथा। इसके द्वारा कर्मचारियों को उनके कार्य की दशाओं, पर्यवेक्षकों, संस्था व इसकी नीतियों के प्रति उनके दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया गया था। इस अध्ययन में प्रारम्भ में निर्धारित प्रश्ननावली के आधार पर हॉथोर्न संयंत्र के 25000 में से 21126 कर्मचारियों के विचार जाने गये किन्तु बाद में 'गहन साक्षात्मकार' विधि के आधार पर उन्हें अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्तंत्रता दी गई। इससे कर्मचारियों को अपने मन में दबी बातों को प्रकट करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ और ये साक्षात्कार उपयोग सिद्ध हुये। इस अध्ययन से ये बातें स्पष्ट हुईं– (i) किसी भी कर्मचारी को स्तंत्रतापूर्वक अपने विचार प्रकट करने एवं शिकायतें प्रस्तुत करने का अवसर प्रदन करके उसके मनोबल में वृद्धि की जा सकती है। (ii) कर्मचारियों की माँगों पर कारखाने के भीतर व बाहरी वातावरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। (iii) शिकायतें कर्मचारियों के मन में छिपे हुये दुखों की अभिव्यक्ति करती हैं, वे केवल वास्तविक तथ्यों का प्रतीक ही नहीं होतीं। (iv) कर्मचारियों की विपरीत भावनाओं को पुनर्समायोजनों (Re-adjustments) के द्वारा दूर किया जा सकता है। (v) कर्मचारी की संतुष्टि संस्था में उसे सामाजिक अस्तित्व को बनाये रखने पर निर्भर करती है। (vi) इस साक्षात्कार में कर्मचारियों को यह अनुभव होने लगा था कि प्रबन्धक उन्हें एक व्यक्ति एवं समूह के रूप में महत्त्वपूर्ण समझते हैं। (vii) अध्ययन में यह भी पाया गया कि श्रम प्रबन्ध सहयोग की समस्या मूल रूप से श्रमिकों की भावनाओं (Emotions) पर आधारित थी न कि भौतिक स्थिति पर। मेयो के अनुसार श्रमिक 'भावना के तर्क' (Logic of Sentiment) से अभिप्रेरित थे, किन्तु प्रबन्धकों का सम्बन्ध 'लागत व कुशलता' के तर्क (Logic of Cost and Efficiency) से था।'' इसलिए श्रमिकों व प्रबन्धकों के बीच सहयोग न होकर मतभेद था।

(vi) सामाजिक संगठन प्रयोग या बैंक वायरिंग प्रयोग (Social Organisation or Bank Wiring Experiment 1931–1937) इसके अन्तर्गत मेयो व उनके साथियों द्वारा ''बैंक वायरिंग अवलोकन समूह (Bank Wiring Observation Group) का अध्ययन'' किया गया जो कि हॉथोर्न प्रयोगो का अन्तिम चरण था। यह अध्ययन सामाजिक प्रकृति का था तथा इसका प्रमुख उद्देश्य कर्मचारियों में अनौपचारिक सामाजिक सम्बन्धों की जानकारी प्राप्त करना था। इसके लिए चोदहकर्मचारियों के एक समूहका निर्माण किया गया तथा इसे कार्य करने के लिए एक पृथक कमरे में रखा गया। यह अध्ययन पहले के दो अध्ययनों से केवल इस बात में भिन्न था कि इसमें प्रयोग प्रारम्भ करने के बाद किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं किया गया। इसमें एक अवतलोकनकर्ता एवं साक्षात्कारकर्ता को युिक्त किया गया था। इस अध्ययन में यह पाया गया कि रिले रूम अध्ययन की भाँति उत्पादन में निरन्तर वृद्धि नहीं हुई, बल्कि कर्मचारियों ने उत्पादन को सीमित रखा। कार्य समूह ने सामाजिक दबावों के कारण उत्पादन को सीमित रखा था। समूह ने प्रतिदिन का प्रमापित कार्य भी अपने आप निश्चित कर लिया था। समूह द्वारा निश्चित प्रमापों से अधिक कार्य करने का प्रयास भी नहीं किया गया। समूह में अत्यधिक एकता होने के कारण कुछ नियम बना लिए थे जैसे (i) किसी भी श्रमिक को अधिक कार्य नहीं करना चाहिए वरना उसे शेखीखोर (rate

buster) कहा जाएगा (ii) इसके विपरीत किसी को बहुत कम कार्य भी नहीं करना चाहिए वरना उसे कामचोर (chieseler) कहा जाएगा (iii) किसी को भी अपने सहकर्मियों की आलोचना पर्यवेक्षक से नहीं करनी चाहिए वरना उसे भेदी (squealar) कहा जाएगा। फलस्वरूप, संस्था के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना असम्भव रहा।

समूह द्वारा उत्पादन को सीमित रखने के पीछे निम्न कारण पाये गये – (i) अधिक कार्य करने से श्रमिको के बेरोजगार हो जाने का डर, (ii) प्रबन्ध द्वारा ऊँचे प्रमाप निर्धारित कर दिये जाने का डर, (iii) अकुशल श्रमिकों की रक्षा, (iv) सामाजिक तिरस्कार का डर, (v) प्रबन्ध की कम उत्पादकता से ही संतुष्टि। इस अध्ययन से मेयो व उसके साथी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रत्येक समूह के कुछ सिद्धान्त व कार्य करने के तरीके होते हैं जो समूह के प्रत्येक सदस्य के व्यवहार को नियंत्रित व नियमित करते रहते हैं। कार्य के दौरान कर्मचारियों के लिए अनौपचारिक सामाजिक सम्बन्धों का अत्यधिक महत्त्व होता है। प्रत्येक व्यक्ति मौद्रिक लाभ की अपेक्षा समूह की मान्यताओं, विचारों, नियमों व सामाजिक बहिष्कार (Social Ostracism) की अधिक चिन्ता करता है।

हॉथोर्न प्रयोगों के परिणाम (Results of Hathorne Experiments)

इन प्रयोगों के परिणाम दी हूमन परोबलम्स ऑफ इण्डस्ट्रियल सिविलाइजेशन, 1933, दी इंडस्ट्रियल वर्कर, 1938, मैनेजमेंट एण्ड वर्कर और मेनेजमेंट एण्ड मोरेल आदि पुस्तकों में प्रकाशित किए गए। इन प्रयोग में मेयो की टी में एफ0जी0 रोथलिसबर्गर, टी0एन0 व्हाइट, जे0 डिक्सन आदि थे। इन परिणामों के बाद मानव सम्बन्ध विचारधार के सन्दर्भ में अनेक बातें स्पष्ट हुई जैसे (i) मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसे मशीन की भाँति न तो समझा जाना चाहिए और न कठोरता से निर्देशित किया जाना चाहिए। (ii) तकनीकी प्रगकत तथा भौतिक पक्ष पर इतना अधिक बल नहीं देना चाहिए कि सामाजिक मानवीय जीवन ही प्रभावित हो जाए। (iii) इन प्रयोगों ने डेविड रिकार्डो की रेब्बल परिकल्पना (यह मानना कि बड़े असंगठित समूह केवल अव्यवस्था फैलाते हैं) को ध्वस्त कर दिया। यह मनुष्य को असंगठित लोगों का ऐसा झुंड मानती है जो केवल स्वार्थ से संचालित होता है। मेयों ने रॉबर्ट ओवन की उस मान्यता को पुनः जीवित कर दिया जो उद्योगपतियों से यह अपेक्षा करती थी कि मशीनों से अधिक ध्यान श्रमिकों पर दिया जाए। (iv) मेयो ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि सहयोग प्राप्त करने के लिए सत्ता तथा विशेषज्ञता की अपेक्षा सामाजिक कौशल अधिक महत्वपूर्ण है। (v) इन प्रयोगों ने औपचारिक संगठन में अनौपचारिक संगठनों की महत्ता को सिद्ध कर दिया। (vi) हॉथोर्न प्रयोगों ने श्रमिकों के व्यवहार पर समूह के प्रभाव के महत्त्व को स्पष्ट तथा प्रभावी ढंग से वर्णित किया।

हॉथोर्न प्रयोगों का संगठन के सिद्धान्तों पर प्रभाव तथा प्रशासनिक संगठन में उपयोगिता (Impact and Utility of Hathorne Experiments)

एल्टन मेयो तथा उनके साथियों द्वारा हॉथोर्न संयंत्र में किए गए प्रयासों के पश्चात् संगठन की परम्परागत विचारधारा को ठेस लगी जो संरचना, कानून व नियम तथा औपचारिकता को महत्वपूर्ण मानती थी। इसी प्रकार मनुष्य को केवल मशीन या मशीन का पुर्जा मानकर उसका वैज्ञानिक ढंग से प्रबन्ध करने के तरीके पर भी सहसा प्रश्नचिन्ह लग गया। संगठन के औपचारिक स्वरूप को महत्वपूर्ण मानने के बजाय उसमें कार्रत अनौपचारक संगठनों तथा मानव सम्बन्धों की व्याख्या भी इन्हीं प्रयोगों से सम्भव हुई। मानव को केवल 'आर्थिक मानव' के बजाय सामाजक मानव तथा सामूहिक निष्ठाओं में जीने वाला जीव इन्हीं प्रयोगों ने सिद्ध किया था। हॉथोर्न प्रयोगों ने यह भी सिद्ध किया कि मनुष्य तथा मानव समूह असंगठित, स्वार्थी तथा अव्यवस्थित नहीं बल्कि वह पूर्णतया सामाजिक प्राणी है जो संगठनों के भीतर भी अपना एक समाज बनाता है। यहीं से मानव सम्बन्ध सिद्धान्त का उदय हुआ।

हॉथोर्न प्रयोगों का प्रशासनिक संगठन पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन इस प्रकार है : (i) इन प्रयोगों ने रॉबर्ट ओवन की उस मान्यता को पुनः बल दिया जिसमें मशीनों के बजाय मानव की ओर चिन्तन करने की सिफारिश है। अर्थात् मानव सबसे बड़ा संसाधन है अतः इसे विकसित करना शुरू हुआ। (ii) प्रशासनिक संगठनों में अनौपचारिक संगठनों तथा सम्बन्धों को मान्यता मिली। (iii) संचार तथा पर्यवेक्षण में लोकतांत्रिक पद्धतियों का महत्व

समझा गया। (iv) प्रशासनिक संगठनों की कार्यकुशलता को कार्मिकों की संतुष्टि के साथ जोड़कर देखा गया तथा मानव के लिए कठोर कानूनों, नियमों, संरचना तथा परम्परागत ढर्रे के द्वारा प्रशासन के संचालन के स्थान पर मानव सम्बन्धों को आधार बनाकर लोचशीलता लाई गई। (vi) श्रमिकों की परिवेदनाओं के निवारण की व्यवस्था शुरू हुई। (vii) अनुपस्थिति, उदासीनता तथा थकान के कारणों को जानने के पश्चात् मानवीय समस्याओं का मानवीय समाधान ढूँढ़ा जाने लगा।

3. उद्योगों में अनुपस्थितिवाद (Absenteeism in Industires, 1943) मेयो ने यह अन्तिम प्रयोग केलिफोर्निया में हवाई जहाज का सामना बनाने वाली फर्म में किया जिसका उद्देश्य द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् उद्योगों में आई अव्यवस्था, श्रम आवृत्ति तथा अनुपस्थिति आदि समस्याओं का समाधान करना था। मेयो की टीम ने अध्ययन के दौरान पाया कि सम्बन्धित उद्योगों के न तो अनौपचारिक समूह थे और ने ही सरल एवं सहज नेतृत्व था जो श्रमिकों को एक समूह के रूप में संगठित करने में सहायता कर सके। श्रमिक अपने व्यक्तिगत सनक के कारण एक टीम बनाने में असमर्थ थे क्योंकि उन्हें प्रबन्ध द्वारा ऐसा करने का अवसर ही नहीं दिया गया। इन कारणों से श्रम आवृत्ति तथा अनुपस्थिति रहती थी।

मेयो ने सुझाव दिया कि (i) प्रबन्धकों को सम्भवतः अनौपचारिक समूह निर्माण के लिए श्रमिकोंको प्रोत्साहित करना चाहिए (ii) श्रमिकों की समस्याओं का समाधान सहानुभूतिपूर्वक करना चाहिए (iii) श्रमिक को इन्सान समझना चाहिए (iv) श्रमिकों में यह भावना नहीं पनपनी चाहिए कि उनका शोषण हो रहा है। अतः औद्योगिक सम्बन्ध पर अधिक बल दिया गया।

मेयो के उपागम का मूल्यांकन (Evaluation of Mayo's Approach)

मेयो ने मानव सम्बन्धों के अध्ययन को केन्द्र बनाकर कई औद्योगिक समस्याओं का समाधान किया और साथ श्रमिकों को मानवीय व्यवहार का पात्र बनाया। उन्होंने श्रमिकों की सामाजिक, मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के महत्व को स्पष्ट किया जो अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होती है। उन्होंने प्रत्येक कारखाने को सामाजिक संगठन का नाम दिया। सामाजिक सन्तोष इन समस्त प्रेरणाओं का स्त्रोत है जिनके द्वारा श्रमिकों को उत्पादन के लिए प्रेरित किया जा सकता है। मेयो ने भीड़ कल्पना (Rabble Hypothesis) का खण्डन किया जिसके तहत प्रबन्ध के सम्पूर्ण समाज को संगठित व्यक्तियों का झुण्ड मानते है। जो अपनी रक्षा स्वयं करते हैं। उन्होंने समाज में छोटे छोटे सहयोगी समूहों के निर्माण पर जोर दिया। इस उपागम के फलस्वरूप उद्योगों में सामाजिक कार्य सम्बन्ध, सम्प्रेषण व्यवस्था, भागीदारी, उदार पर्यवेक्षण, भावात्मक अभिप्रेरणा, आत्मविश्वास, मनोबल आदि अवधारणाओं पर ध्यान दिया जाने लगा।

परन्तु कुछ विद्वानों ने मेयो द्वारा प्रतिपादित मानव सम्बन्ध उपागम की आलोचना भी की है। मिलर तथा फोर्म ने मेयो के प्रयोगों को केवल अनुभववाद और अवलोकन पर आधारित बताया और इनके तरीके वैज्ञानिक नहीं थे क्योंकि कार्य, श्रमिक और वातावरण का चयन व्यवस्थित ढंग से नहीं किया गया और नमूनों (Sample) का आधार छोटा था जिनके आधार पर सामान्य परिणाम नहीं निकाले जा सकते। मेयो ने प्रबन्धकों का पक्ष तो लिया है परन्तु कहीं भी श्रम संघों का उल्लेख नहीं किया। श्रमिकों को एक साधन की भाँति ही देखा गया है भले ही वह सामाजिक कौशल के माध्यम से हो और मुख्य उद्देश्य श्रमिकों से 'अधिक काम लेना' ही रहा। मेयो की मान्यता थी कि संतुष्ट श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं जिसे बेल (Bell) ने गाय समाजशास्त्र (Cow sociology) का नाम दिया है। परन्तु यह प्रबन्धकों की चालाकीपूर्ण प्रवृत्ति को ही दर्शाता है।

उपयुक्त कमियों के बावजूद भी मानव सम्बन्ध सिद्धान्त ने प्रबन्धकीय विचारधारा को एक नई दिशा दी है और परम्परावादी मान्यताओं को चुनौती दी है। कई प्रबन्धकीय परिकल्पनाओं का उद्‌भव हुआ, श्रमिक स्वैच्छिक सहयोग व मानवीय भावनाओं तथा संवेदनशीलता का महत्व दिया गया।

4. नौकरशाही उपागम
(Bureaucratic Approach)

आधुनिक युग में लगभग हर संगठन का स्वरूप नौकरशाही पर आधारित है। क्योंकि राजीनतिक नेतृत्व अस्थाई होता है जिसमें सत्ता परिवर्तन के साथ ही परिवर्तन हो जाता है जबकि अधिकारी तन्त्र स्थाई कार्यपालिका के रूप में कार्य करता है जो योग्यता के आधार पर नियुक्त होता है। समय के साथ अधिकारीतन्त्र पर्याप्त अनुभव तथा शासन शैली में निपुणता हासिल कर लेते हैं और इस प्रक्रिया में राजनैतिक कार्यपालिका पर अपना प्रभाव स्थापित कर लेते है। क्योंकि इसकी शासनतन्त्र की शैली पर पकड़ कम होती है और अधिकतर दलीय क्रियाओं मे व्यस्त रहते हैं। इसलिए आज नौकरशाही हर संगठन का पर्याय बन गई है जिसके साथ मैक्स वेबर का अभिन्न नाता है।

अर्थ तथा परिभाषा (Meaning and Definition)

नौकरशाही का पर्याय मैक्स वेबर को माना जाता है जो 1864 में जर्मनी में धनी परिवार में पैदा हुआ। नौकरशाही शब्द की पारिभाषिक अवधारणा स्पष्ट नहीं है। कुछ इसे कुशलता का पर्याय तो अन्य अकुशलता का कुछ इसे लोक सेवा तो दुसरे अधिकारियों का तन्त्र मानते हैं। ब्यूरोक्रेसी शब्द लेटिन भाषा के ब्यूरो से लिया गया है जिसका अर्थ है डेस्क या लिखने की मेज। फ्रेंच भाषा में भी इससे मिलता जुलता शब्द है जिसका सम्बन्ध उस वस्तु से है जो लोकसेवकों की मेज पर बिछाया जाता है। धीरे–धीरे ब्यूरो शब्द का प्रयोग उस कमरे के लिए किया जाने लगा जिसमें यह मेज रखी जाती थी और 18वीं शताब्दी में अधिकारियों के काम करने की जगह को ब्यूरो कहा जाने लगा। क्रेसी शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया जिसका अर्थ है 'शासन'। सर्वप्रथम ब्यूरोक्रेसी शब्द का प्रयोग फ्रांसिसी अर्थशास्त्री विन्सेन्ट डी0 गोर्ने (Vincent De Gournay 1712-1759) ने सरकार की कमियों के संदर्भ में किया जिस समय अधिकारीतंत्र में व्याप्त कमियाँ, मनमानी, हस्तक्षेप, घपला, अपव्यय आदि का बोलबाला था जिन्हें ब्यूरामोनिया रोग नाम पुकारा गया।

फ्रेंच एकेडमी द्वारा 1798 में प्रकाशित शब्दकोष में इसका अर्थ शासकीय कार्यालयों के अध्यक्षों और कर्मचारियों की शक्ति और प्रभाव के सम्बन्ध में लिया गया। 1830–35 में इंग्लैंड में निर्धन सहायता तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के उपायों के केन्द्रीयकरण के विरोध में इस शब्द का प्रयोग किया गया। थॉमस कार्लाइल ने इसे 'महाद्विपीय कण्टक' के नाम से पुकारा क्योंकि वे ब्यूरोक्रकेसी को यूरोप तक सीमित मानते थे। 1895 में गीटानो मोस्का ने अपनी रचना एलीमेण्टी डि साइजा पोलिटिका (Elementi de Scienza Politica) में इसे शासक वर्ग (Ruling Class) के नाम से पुकारा और इसे बड़े साम्राज्यों के प्रशासन के लिए आवश्यक बताया। लॉस्की ने इस शब्द का प्रयोग उस शासन के लिए किया जहाँ अधिकारियों के हाथों में अत्यधिक नियन्त्रण होता है जो सामान्य नारिकों की स्वतन्त्रता को खतरे में डाल देता है।

हर्बर्ट जी0 हिक्स तथा सी0 रे गुलिट के अनुसार नौकरशाही विशिष्ट पदों का एकीकृत पदसोपान होता है जिनको व्यवस्थित नियमों के द्वारा परिभाषित किया जाता है। यह एक अवैयक्तिक नित्यचर्या पर चलने वाली संरचना है जिसमें निश्चित सत्ता पद से जुड़ी हुई होती है न कि उस व्यक्ति के साथ जो उस पद पर काम करता है। उर्विक के अनुसार, यदि मानवीय सहयोग की व्यवस्थाएं एक निश्चित आकार से बड़ी हो जाए तो संगठन के नौकरशाही स्वरूप से नहीं बचा जा सकता और वह है एक छोटे से मुट्ठी भर अनुयायीयों के साथ नेता का आमने सामने का सम्बन्ध। डिमाक के अनुसार जटिलता नौकरशाही को जन्म देती है। जब तक जीवन सरल रहता है तब तक व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध प्रत्यक्ष रहते हैं और संस्थान सरल रहते हैं; तब व्यक्ति भले ही सुस्त, उदासीन

और आलसी हो किन्तु आप कोई भी ऐसी संस्थात्मक स्थिति नहीं देखेंगे जिसे ठीक ठीक नौकरशाही कहा जा सकता हो। परन्तु एक जटिल वातावरण में संस्थान बड़े हो जाते हैं। सम्बन्ध अवैयक्तिक बन जाते हैं और संगठनों तथा कार्यविधियों को बड़े ध्यान से निर्धारित किया जाता है – इन सबका परिणाम होता है नौकरशाही।

किग्सले और स्टाल ने नौकरशाही को एक पदसोपानिक प्रशासकीय संरचना माना है जिसमें हर व्यक्ति प्रशासन की जटिल मशीन के पुर्जे की तरह फिट हो जाता है। इसमें सन्देह की कोई बात नहीं छोड़ी जाती और सभी प्रशासकीय सम्बन्धों की व्याख्या पहले ही कर दी जाती है और प्राधिकार की मीनार दायित्व के स्तरों में समानान्तर रूप से विभाजित होती है।

मैक्स वेबर नौकरशाही को एक प्रशासकीय संस्था मानते हैं जो एक निश्चित तथा भिन्न समूह होता है और जिसका कार्य और प्रभाव सभी प्रकार के संगठनों में देखा जा सकता है।

उदय के कारण (Factors Responsible for Ride of Bureaucracy)

नौकरशाही के उदय के कारणों में लास्की यूरोप में कुलीन तन्त्र की उपज, लोकतन्त्र का आगमन, राज्यों का विशाल आकार, कार्य और सेवाएं आदि को मानते हैं जबकि वेबर युद्ध, अर्थव्यवस्था की स्थापना, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का जन्म, पश्चिमी समाज में तर्कशक्ति के लिए अधिक परिवेष्ठित (Encompassing), प्रवृत्ति, यूरोप की जनसंख्या में वृद्धि, जटिल प्रशासनिक समस्याओं की उत्पत्ति, संचार के आधुनिक रूप आदि को नौकरशाही के उदय के प्रमुख कारण मानते हैं।

नौकरशाही के प्रकार (Types of Bureaucracy)

नौकरशाही का स्वरूप सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक तत्त्वों से प्रभावित होता है। मोर्सटिन मार्क्स (Morstein Marx) ने मोटे तौर पर नौकरशाही को चार श्रेणियों में बांटा है– अभिभावक नौकरशाही, जातीय नौकरशाही, प्रश्रय या संरक्षण नौकरशाही तथा योग्यता पर आधारित नौकरशाही। जिनका विवेचन यहाँ किया गया है:–

I. जाति नौकरशाही (Caste Bureaucracy) :– यह समाज के वर्ग संबंधों में पैदा होती है। जहाँ पदाधिकारियों की नियुक्ति लगभग उच्च वर्ग अथवा जाति से होती है। एफ0एम0 मार्क्स के अनुसार जाति नौकरशाही के उच्च पदों की योग्यता को जातिगत प्राथमिकताओं से जोड़ा जाता है। उदाहरण के लिए इंग्लैंड में लोक सेवाओं के पदों के लिए कुलीन वर्ग के लोगों को प्रथमिकता दी जाती थी। भारतीय प्रशासनिक सेवा के बारे में एपलबी ने कहा है कि इस सेवा के पदाधिकारी विभिन्न विशेष वर्गों में बांटे जाते हैं और उनको विशेष सेवाएं विशेष रूपों में उपलब्ध कराई जाती है। सामान्य रूप से प्रशासक अपनी जातियों के लिए अधिक कार्य करने की कोशिश करते हैं। प्रारम्भिक रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत लोक सेवाएँ, मेजी (Maiji) संविधान के अन्तर्गत जापानी लोक सेवाएं, 1950 के दशक में फ्रांसीसी लोक सेवाएं आदि जाति नौकरशाही के कुछ उदाहरण हैं।

II. अभिभावक नौकरशाही (Guardian Bureaucracy) : प्लेटो ने अभिभावकों को समुदाय के न्याय तथा जनहित का संरक्षक माना, जिन्हें उनकी शिक्षा के आधार पर चुना जाता था। इस प्रकार की नौकरशाही चीन में 960 ईस्वी से पहले तथा रूस में 640 से 1740 ईस्वी के बीच विद्यमान थी। चीन की सरकार की सभी गतिविधियां प्लेटो के सिद्धांत के अनुरूप थी, यद्यपि उन पर चीनी विचारक कन्फयूशिस के न्याय युक्ति सम्बन्धी विचारों का भी प्रभाव था। अधिकारियों का मुख्य कर्त्तव्य लोगों के सामने एक आदर्श जीवन का उदाहरण पेश करना था। उनका चुनाव उनकी विद्वत्ता के आधार पर होता था तथा उनको सही आचरण के लिए शास्त्रीय पद्धति के आधार पर प्रशिक्षण दिया जाता था।

III. योग्यता पर आधारित नौकरशाही (Merit Bureaucracy) :– ऊपर वर्णित नौकरशाही के प्रकारों में पाए गए दोषों की प्रतिक्रिया से ही योग्यता पर आधारित नौकरशाही का जन्म हुआ। इसमें नियुक्ति योग्यता के आधार पर की जाती है और उसमें निष्पक्ष मापदंडों को प्रयोग किया जाता है। एक बार प्रवेश के बाद पदवी तथा स्थायित्व सुनिश्चित रहते हैं। आधुनिक युग में योग्यता पर आधारित नौकरशाही को अन्य प्रकार की नौकरशाही से अधिक प्रभावी माना जाता है, क्योंकि यह प्रशासनिक मामलों में विवेकशीलता पर बल देती है।

IV. संरक्षण नौकरशाही (Patronage Bureaucarcy) : इसे पुरस्कार व्यवस्था (Spoil-system) भी कहा जाता है। इसमें संरक्षण या प्रश्रय को राजनीतिक नियंत्रण के एक साधन के रूप में देखा जाता है। इसमें मन्त्रियों या चुने हुए प्रतिनिधियों के रक्षितों को लोकसेवाओं के लिए नामजद किया जाता है। सार्वजनिक पदों को उनके समर्थकों में व्यक्तिगत या राजनीतिक इनामों की तरह बांटा जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी से ब्रिटेन में इस व्यवस्था के कुलीन वर्ग को लोकसेवाओं में प्रवेश करने में सहायता दी। अमेरिका को तो इसका जनक माना जाता है। विभिन्न दोषों के कारण इसकी आलोचना होने लगी जिनमें (i) योग्यता का अभाव, (ii) अनुशासनहीनता, (iii) अधिकारियों का लालचीपन, (iv) दोषपूर्ण पद्धतियाँ, (v) पक्षपात, (vi) सेवा भावना का अभाव आदि शामिल हैं।

वेबर का वर्चस्व सिद्धान्त (Weber's Theory of Domination)

वेबर का नौकरशाही सिद्धान्त वर्चस्व के सिद्धान्त का ही एक भाग है। वर्चस्व का अर्थ है नियंत्रण की अधिकारिक शक्ति। दूसरे शब्दों में वेबर ने यह प्रश्न उठाया कि कैसे एक व्यक्ति दूसरों पर अपना प्रभाव जमाता है। वेबर ने वर्चस्व के कुल तीन प्रकार बताये हैं : (i) पारम्परिक वर्चस्व, (ii) श्रद्धा पर आधारित वर्चस्व तथा (iii) वैधानिक या कानूनी प्रभाव। नौकरशाही इनमें से अन्तिम श्रेणी में आती है।

(I) परम्परागत वर्चस्व (Traditional Domination) : परम्परागत वर्चस्व प्रचलित मान्यताओं के औचित्य पर आधारित है जिसका उदाहरण है प्राचीन समय में राजाओं का शासन। परम्परा के अनुसार किसी उच्च जाति या वर्ग का व्यक्ति ही ऊँचे पद का अधिकारी होता था। व्यक्ति की अपनी योग्यता को उसकी जाति से कम महत्त्व दिया जाता था। सभी कर्मचारियों को व्यक्तिगत रूप से राजा का वफादार होना चाहिए अन्यथा उसे हटा दिया जाता था। भारत में भी व्यक्ति का सामाजिक स्तर जातिगत आधार से ही निर्धारित था व्यक्तिगत उपलब्धियों पर नहीं।

(II) श्रद्धा पर आधारित वर्चस्व (Chrismatic Domination) : इसमें जनसामान्य अपने विश्वास के कारण किसी व्यक्ति को लोकोत्तर तथा असामान्य विशेषताओं वाला समझकर उसे अपना नेता मान बैठते थे। ऐसे में वह व्यक्ति पैगम्बर, महात्मा या गुरू माना जाता है और उसके कई अनुयायी तथा शिष्य हो जाते हैं। तब उस नेता का प्रभाव इन अनुयायियों पर छा जाता है। वे उसकी इच्छाओं का पालन करते हैं। आज, ऐसे समाज में भी प्रशासन किन्हीं तार्किक सिद्धान्तों पर आधारित न होकर नेताओं की काल्पनिक तथा हवाई बातों पर आधारित है और यही कार्य कुशलता की कमी का कारण है।

(III) विवेकशील या कानूनी वर्चस्व (Rational or Legal Domination) : विवेकशील सिद्धान्त को ही कानून कहा जाता है। इसलिए वैज्ञानिक वर्चस्व विवेकशील सिद्धान्तों की आवश्यकताओं में होने वाले विश्वास पर आधारित है क्योंकि यह कार्यकुशलता को बढ़ाती है। अतः वैधानिक वर्चस्व की व्यवस्था अत्यन्त कुशल होती है। वैधानिक वर्चस्व का सर्वोत्तम उदाहरण नौकरशाही है।

वैध विवेकशील सत्ता अमुक सम्बन्धित विश्वासों पर आधारित होती है : (i) एक विधि संहिता तैयार की जा सकती है जो संगठन के सदस्यों से आदेश पालन का दावा कर सकती है। (ii) प्रशासन संगठन के हितों को कानून के दायरे में रहकर संगठन के हितों की देखभाल करता है, कानून काल्पनिक नियमों का वह समूह है जो विशिष्ट मुकद्दमों अथवा घटनाओं पर लागू होता है। (iii) जो व्यक्ति सत्ता का प्रयोग करता है, वह भी इस

अवैयक्तिक आदेश का पालन करता है। (iv) एक सदस्य कानून का पालन सदस्य के रूप में ही करता है। (v) अन्त में, वफादारी उस व्यक्ति के प्रति नहीं होती जिसके हाथ में सत्ता है, अपितु उस अवैयक्तिक विधि अथवा आज्ञा के प्रति होती है जिसने उसको उस पद पर नियुक्त किया है।

वेबर ने ब्यूरोक्रेसी पर अपने विचारों का प्रतिपादन अपनी पुस्तक बिर्टशाफ्ट एण्ड गेसल शाफ्ट में किया जो बाद में अंग्रेजी में अनुदित होकर इकानोमी एवं सोसाइटी के नाम से 1921 में छपी थी।

नौकरशाही की विशेषताएँ (Charactersitics of Bureaucracy)

I. पदसोपान (Hierarchy) : प्रत्येक नौकरशाही तंत्र में पदसोपान या पद क्रम का प्रावधन है जिसमें कनिष्ठ कर्मचारी वरिष्ठ स्तरीय कर्मचारियों की देख रेख में काम करते हैं। वरिष्ठ स्तरीय अधिकारियों का मानसिक स्तर ऊँचा होता है और वे संगठन की विधि स्तरीय समस्याओं का संचालन करते हैं। इस प्रकार वरिष्ठ अधिकारियों के आदेशों का पालन कनष्ठि कर्मचारी को ही करना होता है।

II. श्रम–विभाजन (Division of Labour) : श्रम–विभाजन की प्रक्रिया में प्रत्येक कर्मचारी को कार्य का कोई विशेष भाग पूरा करना होता है। एक ही कार्य को बार–बार करते हुए श्रमिक उसमें कुशल हो जाता है और निपुणता हासिल कर लेता है जिससे संगठन के उत्पादन तथा उसकी कार्य कुशलता में बढ़ोतरी होती है। किसी भी विरोध मसले का हल करने के लिए कर्मचारी उसी प्रकार के मसलों की तालश करता है। और दूसरा कर्मचारी उससे सम्बद्ध नियमों की जानकारी हासिल करता है और तीसरा उससे सम्बन्धित फैसला लेता है। इसी प्रकार यह क्रम चलता रहता है।

III. विशेषज्ञता (Exprtise) : अधिकारियों की भर्ती उसकी तकनीकी योग्यताओं के आधार पर की जाती है। यह नियुक्तियाँ प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से की जाती हैं। अधिकारियों को चुना नहीं जाता क्योंकि चुनाव पद्धति में भर्ती तकनीकी योग्यता के आधार पर नहीं हो सकती।

IV. निश्चित वेतन (Fixed Salaries) : कर्मचारियों को निश्चित वेतन के रूप में पारिश्रमिक दिया जाता है और सेवानिवृत्त हो जाने पर पेंशन तथा भविष्य निधि के रूप में सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाती है।

V. कार्यकुशलता (Efficiency) : नौकरशाही एक मशीन की भाँति कुशल है। मशीन तथा नौकरशाही दोनों ही तकनीकी दृष्टि से सर्वोच्च होते हैं। उनकी कार्यकुशलता विवेकशील व्यवहार पर आधारित होती है।

VI. आजीविका की व्यवस्था (Career System) : नौकरशाही के सदस्य के रूप में रोजगार को प्रत्येक कर्मचारी अपनी आजीविका बना लेता है। प्रत्येक कर्मचारी निम्न पद से उच्च पद पर पदोन्नति की आशा करता है जो योग्यता तथा वरीयता पर आधारित होती है। वरीयता के आधार पर की गई पदोन्नति से कर्मचारी में संगठन के प्रति अपनत्व की भावना आती है और इसी से कर्मचारी की सुरक्षा तथा संगठन की कार्यकुशलता बनी रहती है।

VII. कागजी प्रशासन (File Administration) : आधुनिक कार्यालयों का प्रबन्ध प्रशासन लिखित दस्तावेजों तथा फाइलों के आधार पर चलता है। कार्यालय की गतिविधियाँ शासक, उद्यमी तथा कर्मचारी के निजी कार्यों से अलग रहती है। इसी प्रकार कार्यालय से सम्बद्ध कोई निर्णय व्यक्तिगत नहीं होता, प्रत्येक कार्य, निर्णय तथा आदेश लिखित में रिकार्ड में होता है। फाइलें, पंच कार्डस अथवा कम्प्यूटर टेप आदि संस्था के स्मृति कोष हैं, जो भविष्य के कुशल निर्णय लेने में मदद करते हैं।

VIII. अवैयक्तिकता (Impersonality) : संगठन की सेवा चाहने वाला व्यक्ति कर्मचारी की पसंद का भी हो सकता है और कोई नापसंद भी। परन्तु उसे सभी के साथ एक समान व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि वह संगठन अधिकारी की भूमिका निभा रहा है न कि व्यक्तिगत।

IX. नियम तथा उपनियम (Rule and Regulations) : इसमें प्रबन्ध व्यवस्था कुछ निश्चित नियम और उपनियम बनाती है जिनका सभी अधिकारियों को पालन करना होता है। ये नियम सभी पर एक समान लागू होते हैं, इसलिए इनमें मनमानेपन की अनुमति नहीं होती। नौकरशाही संगठन में तकनीकी श्रेष्ठता का होना, परिशुद्धता, गति, स्पष्टता, फाईलों का ज्ञान, निरन्तरता, विवेक, एकता, कठोर अधीनस्थता, वैमनस्य और द्रव्यात्मक एवं व्यक्तिगत लागतों में कमी आदि इष्टतम स्तर पर होते हैं।

कार्ल जे0 फ्रैडरिक (Carl J. Freidrich) ने भी नौकरशाही की कुछ विशेषताओं का वर्णन किया है जिनमें: (i) कार्यों का विभाजन (ii) पदों के लिए निर्धारित योग्यताएं (iii) पदसोपान का संगठन एवं अनुशासन (iv) कार्य रीति की वस्तुनिष्ठता (v) लालफीताशाही (vi) कुछ महत्वपूर्ण मामलों में स्वविवेकी शक्ति का प्रयोग आदि को शामिल किया है।

फैरेल हैडी (Farrel Heady) ने नौकरशाही की तीन विशेषतायें मानी है जिनमें :– (i) पदसोपान (ii) विभेदीकरण तथा विशेषीकरण (iii) योग्यता अथवा गुण आदि शामिल हैं।

आर0एच0 हॉल (R.H. Hall) ने भी नौकरशाही की कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया है जिनमें :– (i) सत्ता का स्पष्ट पदसोपनात्मक व्यवस्था में होना (ii) कार्यों के आधार पर विशेषीकृत श्रम विभाजन (iii) निर्धारित कार्यविधियाँ (iv) अधिकारियों के मध्य पारस्परिक अवैयक्तिक सम्बन्ध (v) तकनीकी योग्यता पर आधारित नियुक्ति तथा पदोन्नति व्यवस्था (vi) विभागीय नियम, जो अधिकारियों के कर्त्तव्यों और क्षेत्राधिकारियों का वर्णन करते हैं आदि शामिल हैं।

आदर्श प्रतिमान (Ideal Model)

वेबर नौकरशाही को मनुष्य द्वारा रचित सर्वाधिक तर्कपूर्ण और कुशल संगठन मानते हैं क्योंकि इसमें नियन्त्रण ज्ञान पर आधारित है। योग्यता का श्रेय स्पष्ट परिभाषित है, कार्य प्रक्रिया नियमों पर आधारित है। इसके अतिरिक्त यह क्रमबद्धता, निरन्तरता, एकता, समन्वय, अधिकारी तथा पदार्थ लागत पर केन्द्रित है। स्थिरता तथा अविरलता (Precision) अनुशासन और विश्वसनीयता में यह किसी अन्य संगठन से सर्वोच्च है। यह सभी प्रकार के प्रशासकीय कार्यों पर लागू की जा सकती है।

वेबर ने नौकरशाही का विश्लेषण केवल अनुभववाद (emperical) के दृष्टिकोण से नहीं किया है बल्कि सभी अन्य संगठनों से अधिकारतन्त्र की विशेषताएं ग्रहण करके आदर्श प्रकार (Ideal Type) प्रतिमान तैयार किया। 'आदर्श प्रकार के संगठनों की विशेषताओं में वह (i) कार्यालयों का पदसोपानिक प्रबन्ध (ii) व्यवस्थित श्रम विभाजन (iii) आचरण और प्रक्रिया के एक समान औपचारिक एवं लिखित नियम (iv) अवैयक्तिक तथा औपचारिक कार्यालय कार्यप्रणाली (v) योग्यता के आधार पर अधिकारियों की भर्ती एवं पदोन्नति को शामिल करते हैं।

जिन संगठनों में इन विशेषताओं का उच्च समूहीकरण होगा उन्हें वेबर आदर्श नौकरशाही संगठन कहते हैं।

भारत में नौकरशाही (Bureaucracy in India) : जहाँ तक भारत में वेबर के प्रतिमान के औचित्य का प्रश्न है यहां की प्रशासनिक व्यवस्था में इसकी सभी संरचनात्मक विशेषताएं अपनाई है। लेकिन हम इसकी व्यावहारिक विशेषताओं पर प्रश्नचिन्ह लगा सकते हैं।

(I) संरचनात्मक विशेषताएँ (Structural Features) : भारत में नौकरशाही के सरंचनात्मक गठन में वेबर प्रतिमान की विशेषताएँ है। लोक सेवाओं की भर्ती संघ तथा राज्यों के लोक सेवा आयोगों द्वारा योग्यता के आधार पर की जाती है। उम्मीदवारों की योग्यता की जांच–पड़ताल के लिए लोक सेवा आयोग परीक्षा लेते हैं तथा उसके पश्चात् उनका साक्षात्कार करते हैं। जैसे–जैसे लोक सेवक का पद ऊँचा होता जाता है वैसे वैसे उसके अधिकारों तथा

वेतन में वृद्धि होती जाती है। इनकी सेवानिवृत्ति की आयु निश्चित होती है तथा इनकी सेवाएं सुरक्षित होती हैं। मंत्री इनके राजनैतिक नेता तथा हाकिम होते हैं और उनकी देख–रेख में काम करते हैं।

(II) व्यावहारिक विशेषताएँ (Behavioural Features) : नौकरशाही की विशेषताएँ विभिन्न राजनैतिक व्यवस्थाओं में भिन्न–भिन्न होती है। प्रजातन्त्र प्रशासन मं इनकी भूमिका साम्यवादी प्रशासन की अपेक्षा भिन्न होती है। मैक्स वेबर के अनुसार जहाँ पर प्रजातंत्रात्मक प्रशासन है वहाँ पर इनकी व्यावहारिक विशेषताओं में (i) राजनैतिक तटस्था, (ii) निष्पक्षता (iii) वफादारी (iv) गुमनामी (v) नियमितता तथा निरन्तरता (vi) गतिशीलता (vii) व्यावहारिक पूर्व अनुमान (viii) गोपनीयता तथा (ix) उत्तरदायित्व को शामिल किया है।

भारत और ब्रिटेन की नौकरशाही में उपरोक्त व्यावहारिक विशेषताएं कहां तक पाई जाती हैं। इस पर प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है क्योंकि इसकी तटस्थता, निष्पक्षता, गुमनामी तथा गोपनीयता अब काफी सन्देहजनक है। अब वास्तविकता तो यह है कि अपने छोटे छोटे हितों को देखते हुए नौकरशाही ने आजकल इन व्यावहारिक विशेषताओं को तिलांजलि दे दी है। अनेक ऐसे लोकसेवक हैं जिन्होंने नौकरी करते हुए पार्टी का सदस्य या चुनाव में पार्टी का टिकट लेने की सौदेबाजी की है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

वेबर का प्रतिमान प्रशासनिक दक्षता का आधार तकनीकी योग्यता प्राप्त कर्मियों के चयन को मानता है, वैध विवेकपूर्ण प्राधिकार की स्थापना, राजनैतिक तटस्थता, विकास एवं पदोन्नति के पर्याप्त अवसर आदि को महत्त्व देता है जो किसी भी संगठन की प्रभावशाली कार्यपणाली के लिए आवश्यक है। इन सब गुणों के बावजूद इस व्यवस्था के कुछ दोष भी हैं जैसे (i) यह संगठन में अनौपचारिक सम्बन्धों को नकारता है। नौकरशाही के विकार्यों (Dysfunctions) की अवहेलना करता है। 'मर्टन' के अनुसार (ii) नौकरशाही के कठोर अनुशासन के कारण भय, रूढ़िवादिता तथा अनावश्यक नियमबद्धता की भावना उत्पन्न होती है। (iii) प्रायः संगठन में सेवा तथा कार्य से सम्बन्धित नियमों की जानकारी पाकर कर्मचारी न्यूनतम अपेक्षित कार्या का मापदण्ड निर्धारित कर लेते हैं जिससे उनकी कार्यक्षमता न्यून हो जाती है। (iv) वेबर ने विशेषज्ञों की भूमिका को अग्रणीय माना जबकि वास्तव में सामान्यज्ञ अधिकारियों का आधिपत्य रहता है। (v) नौकरशाही को शासक वर्ग की विचारधारा से विमुख नहीं रखा जा सकता। (vi) विकासशील देशों में अधिकारीतन्त्र सामाजिक आर्थिक परिवर्तन की भूमिका निभाने में सक्षम नहीं रहा। (vii) नियमों के प्रति अधिक ध्यान रखने से कार्यकुशलता की तीव्रता घटती है और विशिष्ट प्रकृति की अयोग्यता उत्पन्न हो जाती है जिसे वेबर प्रशिक्षित अयोग्यता का नाम देते हैं। माइकल फ्रोजियर इसे जड़ संगठन का नाम देते हैं। (viii) पीटर ब्लाऊ का मानना है कि वेबर का प्रतिमान सभी स्थानों तथा समयों के शासनों के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता। (ix) वेबर ने आदर्श प्रतिमान तैयार करने से पहले वास्तविक परिस्थितियों को नहीं समझा। वेबर स्वयं उलझन में है जब एक ओर वह नौकरशाही को विकास का कुशल यन्त्र मानते हें और दूसरी ओर डरते हैं कि बढ़ती हुई नौकरशाहीकरण व्यक्ति की स्वायत्तता में दखल देगा।

नौकरशाही एक संभ्रान्त वर्ग होता है और इसका कारण इसकी तीन परिस्थितियां है। (i) विशेषज्ञता (ii) सूचना (iii) गुप्त बातों तक पहुँच जिससे सभी इस पर निर्भर हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में नौकरशाही शक्ति पर कैसे अंकुश लगाया जाए यह वेबर की मुख्य चिन्ता थी क्योंकि अंकुश की अनुपस्थिति में लोक संगठनों पर निजी हित संगठित जैसे पूंजीपति, भूमिधारक कब्जा कर लेते हैं जो आपातकाल में घातक सिद्ध हो सकता है क्योंकि तकनीकी ज्ञान हेाते हुए भी इसे राजनैतिक कसौटी की परीक्षा के लिए प्रशिक्षण प्राप्त नहीं होता।

वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की आलोचना के बावजूद यह सत्य है कि यह एक अद्वितीय विचारधारा है जिसे विकसित, विकासशील सभी देशों ने अपना रखा है और इसका कोई विकल्प अभी कहीं नजर नहीं आ रहा है।

नौकरशाही का मार्क्सवादी दृष्टिकोण (Marxist View of Bureaucracy)

सेन्ट साइमन ने नौकरशाही के सम्बन्ध में कहा था कि ''नौकरशाही में वे अधिकारी आते हैं जो शासित लोगों के हितों की दृष्टि से नहीं, अपितु अपने हितों के लिए शासन करते हैं। वे अपने लिए उच्च वेतन का प्रयास करते हैं और केवल व्यर्थ ही नहीं, अपितु अयोग्य परजीवी लोगों की बहुत बड़ी बढ़ती हुई विस्तृत भीड भी है। चूँकि उत्पादकों के रूप में उनकी आवश्यकताएं और इच्छाएं एक जैसी है, किन्तु वे स्वयं कुछ उत्पादन नहीं करते।

नौकरशाही पर कार्ल मार्क्स के विचार (Views of Karl Marx)

1818 में जर्मनी में जन्मे मार्क्स का कहना है कि नौकरशाही का उदय 16वीं शताब्दी के आसपास पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद और राष्ट्र राज्य के उदय के साथ हुआ। धन और सत्ता जब व्यापारी, पूँजीपतियों और राजाओं के हाथों में केन्द्रित हो गई तो धन सम्पदा के प्रबंध और सत्ता के संचालन के लिए विशेष तंत्र की आवश्यकता महसूस होने लगीं यह तंत्र था नौकरशाही। इस तंत्र की मदद से पूंजीपतियों ने दूसरे पूंजीपतियों से लोहा लिया और राजाओं ने सामंतों पर काबू पाने में सफलता हासिल की।

कार्ल मार्क्स ने ''नौकरशाही'' शब्द का प्रयोग अपमानजनक भावना से किया है। सभी मार्क्सवादी यह मानते है कि नौकरशाही पूंजीवादी राज्य के साथ बँधी हुई है, अतः यह एक बुर्जवा घटना है। हीगल के विपरीत, मार्क्स इस बात में विश्वास नहीं रखते थे कि राज्य के भीतर एक विशेष तंग समाज है जो सामान्य हितों को नहीं अपितु अपने ही हित की रक्षा करता है। यह एक सामाजिक शक्ति है जिसके माध्यम से पूँजीवादी राज्य की प्रकृति के विस्तृत विषय के साथ यह अभेद रूप से जुड़ी है। नौकरशाही का कार्य यह है कि वास्तविक शक्ति–सम्बन्धों को छिपाए और शासकों और शोषितों के बीच सामान्य हित का झूठा पर्दा खड़ा करे। कार्ल मार्क्स की नौकरशाही की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

(i) पदसोपान (Hirarchy) : हीगल मानते हैं कि पदसोपान से 'मनमाने प्रभुत्व' को रोका जा सकता है, किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। मार्क्स का विचार है कि इससे अपरिहार्य बुराईयाँ पैदा होती है। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च अधिकारी किसी समस्या की बारीकियाँ समझने का काम निचले स्तर पर छोड़ देता है जबकि निचले अधिकारी मानते हैं कि समस्या को बारीकी से समझने का काम सर्वोच्च अधिकारी का है। इस तरह दोनों एक दूसरे से धोखा खाते हैं। यही कारण है कि उच्च अधिकारियों की शिकायत रहती है कि नीति तो अच्छी थी किन्तु उसे गलत तरीके से लागू किया गया। जबकि निचले स्तर पर यह कहा जाता है कि नीति ही दोषपूर्ण थी।

(ii) श्रम विभाजन (Division of Labour) : मार्क्स का यह मानना है कि श्रम विभाजन से पूंजीवादी समाज के संगठनों की उत्पादकता में भारी वृद्धि होती है। परन्तु श्रम का बुनियादी विभाजन बौद्धिक और भौतिक कार्य व्यापार के बीच है, जिसको हम अनदेखा कर देते हें। मजदूर उत्पादक कार्य करते हैं, जबकि पूंजीपति तथा नौकरशाह केवल बौद्धिक कार्य करते हैं। दूसरी ओर उत्पादकता बढ़ने और नई तकनीकी लागू करने से बेरोजगारी बढ़ती है और मजदूरी कम हो जाती है।

(iii) नियम (Rules) : कार्ल मार्क्स के अनुसार नौकरशाह, अधीनता और अन्धाधुन्ध आज्ञापालन के इतने अभ्यस्थ हो जाते हैं कि वे नियमों का पालन किसी उद्देश्य का प्राप्त करने का साधन ही नहीं बल्कि साध्य मान बैठते हैं। वे मनुष्य से अधिक नियमों को महत्त्व देने लगते हैं। उन्हें वास्तविक ज्ञान खोखला और जीवन बेजान प्रतीत होता है।

(iv) प्रशिक्षण (Training) : हीगल ने भी कहा है कि उदार शिक्षा प्रशासनिक कर्मचारियों को मानवीय बनाती है, परन्तु उनका यह भी मानना है कि प्रशासनिक कर्मचारी का यांत्रिक काम और कार्यालय की विशेषताएं उसके मानवीय दृष्टिकोण को समाप्त कर डालती है। मार्क्स प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से नौकरशाही के सदस्यों के चयन का भी विरोध करते हैं। उनका कहना है कि नौकरशाही में नेतृत्व गुण होना आवश्यक है, जिसकी जाँच

परीक्षाओं से नहीं हो पाती हमने यह कभी नहीं सुना कि ग्रीस और रोम के महान नेताओं ने परीक्षाएं पास की थीं। उच्च शिक्षा द्वारा प्रतिपादित मूल्य तथा दृष्टिकोण पूंजीवाद को मजबूत बनाते हैं। उच्च शिक्षा गरीबों और अमीरों में सामाजिक विषमता पैदा करती है। शिक्षित वर्ग अपने को अशिक्षित निर्धन लोगों से ऊँचा मानने लगता है। इसलिए ऐसे व्यक्ति प्रबन्धक के रूप में नियुक्त होते हैं तो मजदूरों का शोषण करने या देखने में इसे कोई तकलीफ नहीं होती।

(v) मानवीय भावना का ह्रास (Loss of Humanity) : बड़े–बड़े कारखानों में श्रमिक मशीनों की तरह काम करते हैं। जिससे उनमें मानवीय भावना समाप्त हो जाती है। उद्देश्य तय करने या उन्हें पूरा करनेके तरीकों का निर्णय से अधिकतर श्रमिकों का वास्ता नहीं रहता। कार्यालय का स्वरूप भी एक मशीन जैसा होता है। कार्यालय हो या कारखाना कर्मचारी स्वचालित मशीन की भाँति काम करते रहते हैं।

(vi) स्वतन्त्रता का ह्रास (Loss of Freedom) : मजदूरों को मजबूरी में नौकरी करनी पड़ती है क्योंकि स्वतंत्र कारीगर के रूप में काम करना उनके लिए सम्भव नहीं होता। भर्ती हो जाने के बाद उन्हें प्रबन्धकों के तानाशाही नियंत्रण में काम करना पड़ता है। उनका दमन होता है और उन्हें सजा देने की धमकियाँ मिलती हैं। पूंजीपति की आजादी भी खत्म हो जाती है। अपने काम में व्यस्त रहने के कारण वह अपनी इच्छाएँ पूरी नहीं कर पाता। वह अपनी पूंजी बढ़ाने, बचत करने के चक्कर में प्रतिबन्धित खर्च ही कर पाता है।

(vii) अलगाव (Allienation) : अलगाव के सिद्धान्त में शोषण के दुष्परिणामों की चर्चा की गई है। अलगाव की धारणा के चार पहलू हैं (i) स्वतंत्रता का ह्रास, (ii) सृजनता का ह्रास, (iii) मानवीय भावना का ह्रास और (iv) नैतिकता का ह्रास। दूसरे शब्दों में श्रमिकों का नाम उत्पादन से अलग कर दिया जाता है और उद्योगपति की मोहर लगा दी जाती है।

(viii) नैतिकता का ह्रास (Loss of Morality) : स्वतंत्रता, सृजनात्मकता और मानवीय भावना की कमी के कारण नैतिकता में कमी आती है। इंजीनियर या डाक्टर अच्छे पुल बनाने या रोगियों को ठीक करने की अपेक्षा पैसा कमाने में अधिक रूचि रखते है। मानवीय भावना से रहित हो जाना अर्थात दूसरों के दुःख से विचलित न होना निश्चित ही अनैतिक है। इसलिए मार्क्स के अनुसार अनैतिकता पूंजीवादी में अंतर्निहित है।

(ix) सृजनात्मकता का ह्रास (Loss of Creativity) : यह मजदूरों की सृजनात्मकता को दुष्प्रभावित करती है। श्रेणीबद्ध परम्परा होने के कारण कोई भी मजदूर यह नहीं कह सकता कि उसने स्वतंत्र रूप से किसी भी चीज का उत्पादन किया। कर्मचारी स्वयं एक औजार मात्र बनकर रह जाता है। ऐसे नियम लागू किए जाते हैं जिनसे मजदूर हमेशा नियंत्रण में रहे। प्रशासक भी अपनी सृजनात्मकता से हाथ धो बैठता है और लोक प्रशासन में अनाम ही रहता है। पूंजीपति की सृजनात्मकता इसलिए समाप्त हो जाती है कि उसे विशाल संगठनों का संचालन करने में जोखिम का सामना करना पड़ता है।

(x) पूंजीपतियों और श्रमिकों के बीच संघर्ष में तेजी (Shapring of Conflict between Capltalist and Workers) : मानव इतिहास में शोषक तथा शोषित वर्गों के बीच कड़ा संघर्ष होता है। इसी प्रकार पूंजीवादी वर्ग और श्रमजीवी वर्ग के हित एक दूसरे से टकराते हैं और उनका संघर्ष जारी रहता है। मार्क्स का मत है कि अन्त में मजदूरों की संगठित शक्ति क्रांति के द्वारा पूंजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में सफल हो जाती है। पूंजीवाद के साथ साथ नौकरशाही भी समाप्त हो जाती है और पूंजीवादी वर्ग की तानाशाही के स्थान पर सर्वहारा वर्ग की तानाशाही स्थापित हो जाती है जो थोड़े समय के लिए रहती है जिसके दौरान एक वर्गविहीन नए समाजवादी समाज का जन्म होता है जिसमें सरकार की भी आवश्यकता नहीं होती क्योंकि सरकार का काम एक वर्ग पर दूसरे वर्ग का प्रभुत्व बनाए रखना है। इस प्रकार शासनतन्त्र भी समाप्त हो जाता है।

समाजवादी समाज में प्रशासन पर मार्क्स के विचार (Marx's View on Adminsitration in Socilaist Society) : मार्क्स ने कहा कि भावी समाजवादी समाज वैसा ही होगा, जैसा हम बनायेंगे। उन्होंने पैरिस कम्यून के स्वरूप का मूल्यांकन किया जो क्रांति के बाद स्थापित हुआ था जिसमें प्रशासन पूर्ण रूप से लोकतांत्रिक होगा, उत्पादकों की स्वायत्तता, स्थायी सेवा की समाप्ति, सभी स्तरों पर कम्यूनों की स्थापना, प्रशासन का विकेन्द्रीकरण, चुनाव की परोक्ष प्रणाली, जनता को वोट देने का अधिकार, निर्वाचित प्रतिनिधियों को वापिस बुलाने का अधिकार, पुलिस पर कानून का नियन्त्रण, निशुल्क शिक्षा, स्वतन्त्र तथा उत्तरदायी न्यायपालिका आदि को शामिल किया जाएगा।

आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation) : मार्क्स सिद्धान्त का श्रमिक उन्मुख होने के कारण पूंजीवादी समर्थकों ने इसकी आलोचना की है : (i) वर्ग प्रभुत्व समाप्त करने की मार्क्स की आशा अव्यावहारिक है क्योंकि यह प्रभुत्व तो सदैव रहा है। (ii) मार्क्स का यह मानना ठीक नहीं है कि राष्ट्र राज्य जैसी बड़ी संस्थाओं को समाप्त किया जा सकता है। (iii) समानता कभी नहीं लाई जा सकती क्योंकि मनुष्य जन्म से ही असमान है। (iv) लोगों को प्रेरणा और उत्साह देने के लिए प्रतियोगिता तथा पुरस्कारों मं अंतर रखना आवश्यक है। (v) कुछ लोग यह भी मानते हैं कि आक्रमण करना मनुष्य की स्वाभाविक मनोवृत्ति है इसलिए युद्ध रोकना और स्थायी सेवा को समाप्त करना संभव नहीं है। (vi) मार्क्स पर तानाशाही समर्थन का भी आरोप लगाया जाता है।

इकाई–2

5. अभिप्रेरणा एवं मनोबल
(Morale & Motivation)

किसी भी संगठन की कार्यकुशलता एवं कार्यक्षमता में वृद्धि करना उस संगठन के लक्ष्यों की त्वरित प्राप्ति के लिए आवश्यक होता है। इस दिशा में कुशल प्रबन्धक अनवरत प्रयत्नशील रहते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि संगठन के सभी संसाधनों यथा–पूँजी, यंत्र, ऊर्जा एवं मानव 'श्रमशक्ति (कार्मिक) का अधिकतम सम्भव उपयोग हो। संगठन में उपलब्ध मानव श्रमशक्ति अर्थात् कार्मिक वर्ग की क्षमताओं के श्रेष्ठतम उपयोग हेतु आवश्यक है कि संगठन के कार्मिक अपने कार्य के प्रति प्रतिबद्ध, संतुष्ट एवं अभिप्रेरित हों जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बदलते परिदृश्यों एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र के तीव्र परिवर्तनों से मानव के निजी जीवन एवं प्रबन्ध विज्ञान में 'अभिप्रेरणाओं' का योगदान महत्त्वपूर्ण हो गया है। सभी आधुनिक संगठनों में कार्यरत मानव श्रमशक्ति के मनोबल के स्तर को उच्च करने एवं उसे निरन्तर अभिप्रेरित करने के लिए न केवल निरन्तर उपाय किये जा रहे हैं अपितु इस दिशा में अनवरत अनुसंधान के माध्यम से संगठनों को अधिक परिणाममूलक बनाने के प्रयत्न भी हो रहे हैं।

अभिप्रेरणा का अर्थ (Meaning of Motivation)

अभिप्रेरणा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए **हैराल्ड एफ, गॉर्टनर** लिखते हैं– ''अभिप्रेरणा मनुष्य के व्यवहार को समझने का उद्देश्यपूर्ण तथा उपयोगी माध्यम है। मनुष्य की आवश्यकताओं (Needs), चालक (Drive) तथा लक्ष्यों (Goals) के बीच अन्तरसम्बन्ध ही अभिप्रेरणा है।''

मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में अभिप्रेरणा वह शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कोई क्रिया सम्पन्न करता है। वह इस क्रिया को विशेष दिशा की ओर प्रवाहित करता है और कार्य सम्पन्न होने तक उसे शक्ति प्रदान करता है, अर्थात् क्रिया को उत्पन्न करना, उसे दिशा देना और लक्ष्य प्राप्ति तक क्रिया को जीवन्त बनाए रखना ही अभिप्रेरणा का मर्म है।

वस्तुत : अभिप्रेरणा किन्हीं निश्चित कार्यों या लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति को प्रेरित करने की क्रिया है। इस क्रिया को उत्तेजित करने हेतु कतिपय आवश्यकताओं, चालकों एवं यथोचित वातावरण का होना परमावश्यक है। इन संदर्भो के स्पष्टीकरण हेतु अभिप्रेरणा से सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण प्रासंगिक है।

अभिप्रेरणा के सिद्धान्त (Theories of Motivation)

1. **द्रव्यात्मक सिद्धान्त (Morristic or Monetary Theory)** :– संगठन और प्रबन्ध के ऐतिहासिक प्रारम्भिक काल में 'टेलर की वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा' अभिप्रेरणा के निम्नांकित बिन्दुओं को अभिव्यक्त करती थी –
    1. किसी भी संगठन में कार्यशील कार्मिक प्राथमिक रूप से आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति चाहते हैं, तदुपरान्त सुरक्षा एवं कार्यदशाओं की माँग पर बल देते हैं।
    2. उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु यदि ध्यान दिया जाए तो कार्मिकों का मनोबल सकारात्मक रूप से ऊँचा होता है तथा

3. मनोबल एवं उत्पादकता के मध्य सीधा सम्बन्ध है। उच्च मनोबल उत्पादकता वृद्धि में सहायक होता है।

2. मैस्लो का आवश्यकताओं की क्रमबद्धता का सिद्धान्त

(Maslow's Hierarchy of Needs Theory)

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक प्रो. ए.एच. मैस्लो ने अपनी पुस्तक 'मोटिवेशन एण्ड पर्सनलिटी (1954)' में अभिप्रेरणा को मनुष्य की आवश्यकताओं पर आधारित बताते हुए कहा है कि मनुष्य पूर्णतया संतुष्ट कभी नहीं होता है। ज्यों ही उसकी एक आवश्यकता की पूर्ति होती है, उसकी दूसरी आवश्यकता जागृत हो जाती है। मैस्लो ने प्राथमिकता के अनुसार आवश्यकताओं की क्रमबद्धता को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया है।

प्रथम : शारीरिक आवश्यकताएँ यथाः भोजन, आवास तथा काम इत्यादि।

द्वितीय : सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ यथा–भौतिक एवं भावात्मक रूप से बाह्य खतरों, आजीविका सम्बन्धी, मौसम सम्बन्धी एवं आपराधिक गतिविधियों से सुरक्षा।

तृतीय : सामाजिकता की आवश्यकताएँ, यथा–प्रेम, सौहार्द, अपनत्व तथा आपसी सहयोग इत्यादि की आवश्यकताएँ।

चतुर्थ : मान–यश की आवश्यकताएँ यथाकृसफलता, सम्मान, प्रस्थिति, पहचान तथा मान्यता सम्बन्धी आवश्यकताएँ।

पंचम : चरमोत्कर्ष या आत्मसिद्धि की आवश्यकताएँ यथा–आगे बढ़ने की इच्छा, सफलता के साथ कार्य में निपुणता एवं स्वयं की एक प्राकृतिक पहचान की आवश्यकता।

3. मैक्ग्रेगर का एक्स–वाई सिद्धान्त (MeGregor's X&Y Theory)

डगलस मैक्ग्रेगर ने अभिप्रेरणा से सम्बन्धित दो सिद्धान्त प्रस्तुत किये थे। उनका प्रथम सिद्धान्त 'एक्स' मानव प्रकृति के बारे में एक निराशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह सिद्धान्त मानकर चलता है कि व्यक्ति या कार्मिक कार्य नहीं करना चाहते और वे प्रकृतित : आलसी होते हैं। उनकी कोई महत्त्वाकांक्षाएँ नहीं होती, वे किसी अन्य व्यक्ति के नेतृत्व में कार्य करना चाहते हैं और वे मूलतः वैयक्तिक आर्थिक प्रेरणाओं से ही अभिप्रेरित होते हैं। वे ऐसा शासकीय नेतृत्व पसन्द करते हैं जो निर्देशात्मक व्यवहार करता है और जिसकी शैली नियंत्रण, दमन, प्रताड़ना तथा दण्डकारी होती है। कालान्तर में मानवीय व्यवहार के सूक्ष्म अध्ययन के पश्चात् मैक्ग्रेगर ने अभिप्रेरणा का आशावादी 'वाई' सिद्धान्त प्रस्तुत किया। वाई सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति स्वेच्छा से केवल कार्य ही नहीं करना चाहता, अपितु उसमें वह आनंद की अनुभूति भी करता है। वह कार्य को श्रेष्ठतर तरीके से करना चाहता है। ऐसा व्यक्ति स्वनियंत्रण और स्वयं के विकास की संभावनाओं से अभिप्रेरित होता है। ऐसे संगठन में प्रबन्धों की भूमिका निर्देशन तक सीमित होती है और उस संगठन में प्रगति, स्वायत्तता तथा कुशल कार्यकर्ताओं को पुरस्कृत करने पर बल रहता है। सद्व्यवहार, उपयुक्त अवसर, अच्छा नियंत्रण तथा निर्देशन इत्यादि उसके कार्यनिष्पादन को बढ़ा सकते हैं। केवल वित्तीय प्रलोभन ही नहीं, अपितु कार्य की प्रशंसा और स्वाभिमान की रक्षा भी उसकी अभिप्रेरणा में वृद्धि करते हैं।

4. अभिप्रेरणा का आरोग्य सिद्धान्त (Hygiene Theory of Motivation)

हर्जबर्ग द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त अभिप्रेरणा के तत्त्वों को दो समूहों या घटकों में बाँटता है –

- आरोग्य तत्त्व (Hygiene Factors)

- अभिनेरक (Motivators)

मनोवैज्ञानिक चिन्तक हर्जबर्ग के अनुसार जब कोई कार्मिक अपने कार्य से असन्तुष्ट होता है तो उसके असन्तोष के लिए उत्तरदायी कारकों में प्रमुख कारण वह वातावरण होता है जिसमें वह कार्य करता है। इसे ही 'आरोग्य तत्त्व' कहा गया है। इस आरोग्य तत्त्व को प्रभावित करने वाले कारक हैं संगठन की नीति, वेतन, प्रस्थिति, अधीनस्थों एवं पर्यवेक्षक से सम्बन्ध एवं अन्तरवैयक्तिक सम्बन्ध। इसी तरह जब कोई कार्मिक अपने कार्य से संतुष्ट होता है तो ऐसा अभिप्रेरक तत्वों के कारण होता है। हर्जबर्ग द्वारा इन्हें 'अभिप्रेरक' कहा गया है। अभिप्रेरकों में कार्य उपलब्धियाँ, पहचान या मान्यता, उत्तरदायित्व तथा उन्नति या विकास के अवसर इत्यादि सम्मिलित हैं। इस प्रकार कार्मिकों की कार्य के प्रति असंतुष्टि कम करने के लिए आरोग्य तत्त्वों की तरफ अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इसे अभिप्रेरणा का **'द्विघटक सिद्धान्त'** भी कहा जाता है।

अभिप्रेरणा के कतिपय अन्य समसामयिक सिद्धान्त

(Some other Contemporary Theories of Motivation)

अभिप्रेरणा से सम्बन्धित कतिपय नवीन सिद्धान्तों के विकास के प्रति सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक चिन्तक निरन्तर समर्पित रहे हैं। उनके चिन्तन से यह आभास होता है कि नूतन सिद्धान्त के मूल में मैस्लो का आवश्यकता की क्रमबद्धता का सिद्धान्त और हर्जबर्ग का आरोग्य सिद्धान्त प्रमुख प्रेरणा रहे हैं। समसामयिक सिद्धान्तों में कतिपय का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

1. **क्लेटन अलडेरफर ने अपने ई.आर.जी. सिद्धान्त** में मैस्लो की 'आवश्यकताओं की क्रमबद्धता' के सिद्धान्त को परिवर्तित करते हुए माना है कि मनोवैज्ञानिक रूप से व्यक्ति अपने अस्तित्त्व (Existence), सम्बद्धता (Relatedness) तथा विकास या वृद्धि (Growth) की तीन मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति – चाहता है। इन आवश्यकताओं में क्रमबद्धता का सिद्धान्त अनिवार्य नहीं है किन्तु मनुष्य की पूर्ण संतुष्टि के लिए उपर्युक्त तीनों आवश्यकताएँ पूर्ण होनी चाहिए।
2. **डेविड मैक्कलीलैण्ड का तीन आवश्यकताओं का सिद्धान्त (Three Needs Theory)** यह इंगित करता है कि उपलब्धियाँ (Achievements), शक्ति (Power) तथा मैत्रीपूर्ण सम्बद्धता (Friendly Relatedness) ऐसी तीन आवश्यकताएँ हैं जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति पूरी तरह करना चाहता है। इनकी पूर्ति से प्रत्येक व्यक्ति मनोवैज्ञानिक रूप से अभिप्रेरित होता ळें
3. **एडविन लॉक द्वारा प्रतिपादित 'लक्ष्य निर्धारण सिद्धान्त' (Goal Setting Theory)** यह मानकर चलता है कि किसी व्यक्ति को यदि कठिन एवं विशिष्ट लक्ष्य प्रदान किये जाएँ तो ये लक्ष्य उसे और अधिक कठिन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित करते हैं। लक्ष्य निर्धारण से व्यक्ति की निष्पादन क्षमता में असाधारण वृद्धि होती है। **मेहानी एवं जोंस ने इसे पथ–लक्ष्य सिद्धान्त का नाम दिया है।**
4. **जे. स्टासी एडम्स द्वारा प्रतिपादित 'समानता का सिद्धान्त'** इस तथ्य को इंगित करता है कि व्यक्ति अपने कार्य में हुए निवेश एवं निष्पत्ति की दूसरे व्यक्ति के निवेश एवं निष्पत्ति से तुलना करता है। इस तुलनात्मक अध्ययन से जो असमानता का बिन्दु उसे दिखाई देता है, उसका वह इस दृष्टि से निराकरण करना चाहता है कि असमानता या असमान निष्पत्ति के उस उत्तरदायी कारक के निवारण से वह अपनी प्रतियोगितात्मक निष्पत्ति में सुधार कर सकता है।

मनोबल (Morale)

किसी भी संगठन की कार्यकुशलता में वृद्धि करने में उसके कार्मिकों का उच्च मनोबल अत्यधिक योगदान देता है।

मनोबल का तात्पर्य उस बल से है जो व्यक्ति को ऊर्जा एवं स्फूर्ति प्रदान करता है। वह किसी कार्मिक की कार्य के प्रति उसकी अभिवृत्तियों का भी परिचायक है। अन्य शब्दों में मनोबल कार्मिकों की अपने कार्य के प्रति भावना, वेतन, सेवा–दशाओं, पर्यवेक्षकों, संगठन तथा सहकर्मियों के सन्दर्भ में विश्लेषण है। इस सन्दर्भ में मनोबल व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही प्रकार की स्थिति स्पष्ट करता है। व्यक्तिगत मनोबल कार्मिक का अपने कार्य के प्रति अभिवृत्ति का परिचायक है। 'समूह मनोबल' कार्मिकों की संगठन के प्रति उनकी सामान्य विचारधारा का द्योतक है।

कीथ डेविस के शब्दों में–''व्यक्तियों एवं समूह का उनके संगठन के श्रेष्ठतम हित में क्षमतानुरूप स्वैच्छिक योगदान तथा उनकी कार्य के पर्यावरण के प्रति अभिवृत्तियाँ मनोबल की प्रतीक हैं।''

प्रो, हरगोपाल एवं प्रो. मनोहर के शब्दों में–'मनोबल वह शक्ति है जो किसी समूह को जीवित, चैतन्य तथा उत्तेजित रखती है ताकि कार्य निष्पत्ति का उच्चतम स्तर प्राप्त किया जा सके।'

मोरिस विटलेस के अनुसार–'मनोबल मनुष्यों में शारीरिक एवं भावनात्मक रूप से वह स्वस्थ स्थिति है जो व्यक्ति को उसके कार्य सम्पन्न करने में ऊर्जा, उत्साह तथा आत्मानुशासन की स्थिति प्रदान करती है।'

मनोबल के महत्त्व का अंकन कोई सरल कार्य नहीं है क्योंकि मनोबल कार्य की प्रक्रिया में निहित होता है और यह प्रेरणात्मक शक्तियों के प्रभाव को मान्यता प्रदान करता है। मनोबल कार्मिकों को आशावादी, उत्साही, प्रभावशाली तथा अनुशासित बनाने में अहम् भूमिका निभाता है। जिस किसी कार्मिक का मनोबल ऊँचा होता है वह अपने कार्य में निपुणता प्राप्त कर सकता है। यदि उसके कार्य की प्रशंसा होती रहे तो उसे आगे बढ़ने में कोई कठिनाई नहीं आ सकती है। किसी भी कार्मिक का उच्च मनोबल होना उसकी संतुष्टि, संगठन के उद्देश्यों में विश्वास तथा प्रतिबद्धता को इंगित करता है। व्यक्तिगत मनोबल जहाँ कार्मिक को देय वृत्तिका विकास अवसरों, सम्मान तथा पद पर निर्भर करता है वहीं समूह मनोबल वृहत् रूप से कार्यदशाओं, संचार, पर्यवेक्षण तथा संगठन की शर्तों पर आधारित होता है।

जिन संगठनों में कार्मिकों को नीति–निर्माण में सहभागिता, संगठन के लक्ष्यों का ज्ञान, उचित पर्यवेक्षण, प्रेरणादायक नेतृत्व, कार्य की अनुकूल स्थितियाँ तथा वृत्तिका विकास के पर्याप्त अवसर मिलते हों वहाँ कार्यरत कर्मचारियों का मनोबल उच्च स्तरीय पाया जाता है। उनके अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि

मनोबल को प्रभावित करने वाले सात कारक हैं –

1. निकटतम पर्यवेक्षण
2. व्यक्तिगत पुरस्कार
3. संगठन के कार्य
4. कार्य की मनोवैज्ञानिक दशाएँ
5. कार्य संतुष्टि
6. कार्य के सम्बन्ध
7. संगठन में एकीकरण।

मनोबल एवं अभिप्रेरणा में अन्तर (Difference between Morale and Motivation)

मनोबल स्वयं कार्य करने की इच्छा या शक्ति का पर्याय है जबकि अभिप्रेरणा कार्य करने की इच्छा तथा कार्यक्षमता (शक्ति) के बीच पुल का कार्य करने वाला तत्त्व माना जा सकता है। संगठन में कार्य करने की दशाएँ, सेवा–शर्ते एवं वृत्तिका विकास के पर्याप्त अवसर कार्मिकों के मनोबल को ऊँचा बनाए रखते हैं एवं अभिप्रेरणा तत्त्वों के रूप में भी कार्य करते हैं।

मनोबल का मापन हो सकता है, अभिप्रेरणा का नहीं। मनोबल अच्छी या बुरी भावना की अभिव्यक्ति है जबकि अभिप्रेरणा इस भावना तथा संतुष्टि का निर्माण करती है।

मनोबल, व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों प्रकार का हो सकता है। एक संगठन में कार्य करने वाले। कार्मिकों का बल समूह संशक्ति (Group Cohesiveness) के रूप में देखा जा सकता है। यदि मनोबल निम्न स्तरीय है तो उसे निश्चित उपायों से उच्च स्तरीय भी किया जा सकता है किन्तु अभिप्रेरणा एक ऐसा तत्त्व है जो समूह पर लागू नहीं किया जा सकता है। मनोबल एवं अभिप्रेरणा का अन्तरसम्बन्ध बहुत गहरा तथा परस्पर निर्भर है। इन दोनों को पूर्णतया पृथक् करके नहीं देखा जा सकता है। सामान्यतः प्रेरणा उस बाहरी वस्तु को कह सकते हैं जो व्यक्ति दूसरे को देता है जैसे–नेपोलियन बोनापार्ट या महात्मा गाँधी की जीवनी पढ़कर हम प्रेरित होते हैं। इसी तरह वेतन, सुविधाएँ तथा भौतिक वस्तुएँ भी प्रेरणा का कार्य करती हैं। अभिप्रेरणा एक आन्तरिक अनुभूति है जो व्यक्ति स्वयं को देता है, लेकिन स्वयं को अभिप्रेरित करने के लिए कुछ कारक अवश्य होते है। इसी प्रकार मनोबल किसी व्यक्ति के आत्मविश्वास या आन्तरिक बल से सम्बन्धित है। मनोबल एक ऐसी शक्ति है जिसकी सीमा अनन्त है। अभिप्रेरणाओं के अभाव में मनोबल टूट जाता है तथा अभिप्रेरणाएँ बढ़ा देने पर मनोबल भी उच्च हो जाता है।

अभिप्रेरणा एवं मनोबल का संगठन पर प्रभाव (Influence of Motivation and Morale On an Organisation)

अभिप्रेरणा का सम्बन्ध कार्य से होता है। अभिप्रेरणा में वृद्धि कार्यवृद्धि की सूचक है जो शिक्षा–अभ्यास से सम्बन्धित मानवीय कार्यकलाप तथा कुशलता को बढ़ाती है परन्तु कार्य का निष्पादन अभिप्रेरणा पर आधारित है। अभिप्रेरणा के बढ़ने से कार्यनिष्पादन में वृद्धि होती है, जिसको एक छोटे रूप में व्यक्त किया जा सकता है –

कार्यनिष्पादन = कुशलता x अभिप्रेरणा

अभिप्रेरणा कुशलता में कुछ जोड़ती नहीं अपितु गुणात्मक वृद्धि करती है और इस प्रकार कुशलता और अभिप्रेरणा के अनुबन्ध से कार्यनिष्पादन में वृद्धि सम्भव है। कार्यनिष्पादन में वृद्धि से उद्योगों में उत्पादन बढ़ता है और जन सेवाओं से सम्बन्धित सेवाओं की प्रभावशीलता मुखरित होती है। अच्छे एवं अधिक अभिप्रेरणा तत्त्वों की उपस्थिति से किसी भी संगठन में कार्यकुशलता, कर्मचारियों की कार्य–संतुष्टि, समन्वय एवं सौहार्द्र में वृद्धि होती है। इससे संगठन सामाजिक ख्याति प्राप्त करता है और अपनी उपादेयता के कारण विकास के मार्ग पर बढ़ता चला जाता है। आधुनिक प्रबन्ध विज्ञान में मानव श्रमशक्ति को एक अमूल्य संसाधन के रूप में इसीलिए देखा जा रहा है कि मानव ही संगठन की कार्यक्षमता, कार्यकुशलता तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ संसाधन है। इस संसाधन (मानव श्रमशक्ति) के सर्वांगीण विकास एवं उसकी क्षमताओं के श्रेष्ठतम उपयोग हेतु उच्च अभिप्रेरणा एवं मनोबल का होना प्राथमिक आवश्यकता है।

6. पर्यवेक्षण
(Supervision)

निर्णय लिए जाने के पश्चात् प्रमुख प्रशासकों का यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि उन्हें ठीक प्रकार से कार्यान्वित किया जाय। यह उनका कर्तव्य है कि वे देखें कि संगठन ठीक प्रकार से कार्य करे तथा जिस उद्देश्य के लिए स्थापित किया गया है उसे प्राप्त करे। यह देखना कि संगठन अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करे पर्यवेक्षण कहलाता है। इसे प्रबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण कार्य कहा जा सकता है। पर्यवेक्षण का उद्देश्य सेवाओं के स्तर को बनाये रखना भी होता है। बटन एवं बुकनर के शब्दों में, "पर्यवेक्षण एक विशेष तकनीकी सेवा है, जिसका उद्देश्य उन सब घटकों का परस्पर सहयोग एवं उन्हें उन्नत करने का प्रयास होता है जो संगठन के विकास को प्रभावित करते है। अतः पर्यवेक्षण द्वारा अधीनस्थ श्रमिकों या कर्मचारियों की कार्यक्षमता को बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। नीति–निर्माण, योजना, बजट, कार्मिक व्यवस्था तब तक सफल परिणाम नहीं दे सकते, जब तक यह उत्तरदायित्व किसी को सौंपा न जाय जिससे वह देखें कि जो निर्धारित किया गया है उसी के अनुसार कार्य चल रहा है। संगठन में कार्य करने वाले भी दिशा निर्देशन एवं परामर्श के लिए किसी दूसरों को देखते रहते हैं। अतः प्रत्येक संगठन में चाहे वह व्यक्तिगत हो या सार्वजनिक, पर्यवेक्षण एक महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है। संगठन के पद सोपानीय स्वरूप में प्रत्येक स्तर, अपने से अधीनस्थ स्तर के कार्यों का पर्यवेक्षण करता है।

पर्यवेक्षण का तात्पर्य :– पर्यवेक्षण (Supervision) अंग्रेजी भाषा के दो शब्दों–''सुपर'' एवं "विजन'' से बना है जिसका अर्थ सर्वोच्च दृष्टि हैं इसका अर्थ ऊपर से देखना या दूसरों के कार्यों का अधीक्षण करना है। साधारण रूप में पर्यवेक्षण की परिभाषा दूसरों के कार्यों का अधिकारपूर्ण निर्देशन या अधीक्षण है। मागरिन्ट विलियमसन के शब्दों में, "यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारियों को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप अधिकारी द्वारा सहायता दी जाती है जिससे वह अपने ज्ञान एवं कौशल को बढाकर अपने कार्य को अधिक प्रभावशाली तरीके से सम्पन्न कर सके तथा अपने को एवं अन्य अभिकरणों को सन्तुष्ट कर सके। ''अतः संक्षेप में पर्यवेक्षण परिणामों को प्राप्त करना है । एकल्स एवं उसके साथी विद्वानों के अनुसार, "निश्चित नीतियों एवं सिद्धान्तों के आधार पर संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु उचित नियन्त्रण, मार्गदर्शन तथा समुचित व्यवस्था ही पर्यवेक्षण है'' डालबेक के शब्दों में निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दूसरों के कार्यों का निर्देशन एवं उनमें समन्वय का कार्य करना पर्यवेक्षण है।" इस प्रकार पयवेक्षण एक जटिल कार्य है तथा इसमें भौतिक एवं मानवीय अनेक तत्व आ जाते हैं।

पर्यवेक्षकों के प्रकार :– पर्यवेक्षक निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं

1. **श्रेणीगत पर्यवेक्षक (Line Supervisor)** – श्रेणीगत पर्यवेक्षक का अभिप्राय सत्ता सम्बन्धी नियन्त्रण से है। ("Line Supervisor refer to control eÛercised by the persons in line of Command") उदाहरणार्थ, पुलिस विभाग में उप–पुलिस अधीक्षक (D.S.P.) का कार्य पुलिस अधीक्षक (S.P) के द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। संगठन में यह क्रम निरीक्षक के पद तक चलता रहता हैः जैसे D.I.G→S.P→Dy. S.P→Inspector→S.I. →A.S.I→Head Constable.
2. **कार्यात्मक पर्यवेक्षक (Functional Supervisor)** कार्यात्मक पर्यवेक्षक वे अधिकारी होते है जो तकनीकी मामलों का नियन्त्रण करते हैं। उदाहरण के लिए लेखा परीक्षक (Auditors), तथा लेखाकार (Accountant) कार्यात्मक पर्यवेक्षक हैं।

पर्यवेक्षण के तरीके या ढंग

Methods of Supervision

मिलेट (Millet) ने पर्यवेक्षण के निम्नलिखित छह तरीके बताए हैं

1. **परियोजनाओं की पूर्व स्वीकृति (Prior approval of Individual Projects)** – संगठन के किसी कार्य का पर्यवेक्षण करने से पहले पर्यवेक्षक की पूर्व स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिए। पूर्व स्वीकृति लेने से योजनाओं में लचीलापन आ जाता है और त्रुटियो को ठीक करने की गुंजाइश भी रहती है। हालांकि अनावश्यक पूर्व स्वीकृति से प्रशासन में लाल फीताशाही की वृद्धि होती है। भारत में परियोजनाओं को क्रियान्वित करने से पूर्व विभागाध्यक्षों के अतिरिक्त वित्त मन्त्रालय की भी पूर्व स्वीकृति ली जाती है।

2. **सेवा स्तर पर मानदण्ड की घोषणा (Promulgation of Service Standards)** – सेवा स्तर का अर्थ है कि सेवा के बारे में कुछ मानदण्ड, मापक या उद्देश्य (जंदकंतके, ल्ंतकेजपबा वत ज्ंतहमजे) पूर्व निर्धारित कर लिए जाते हैं। पर्यवेक्षण के दौरान यह देखा जाता है कि क्या संगठन इन मानदण्डों के अनुसार कार्य कर रहा है या नहीं । उदाहरण के लिए, एक स्कूल या कॉलेज में विद्यार्थियों का पास प्रतिशत, अनुशासन, अध्यापकों का मनोबल, पढ़ाने में निपुणता तथा खेल–कूद व सांस्कृतिक गतिविधियों में योगदान आदि उसकी सेवाओं का मानदण्ड हो सकता है। यह अत्यन्त कठिन कार्य है।

3. **कार्यों की व्यापकता पर बजट सम्बन्धी सीमाएं (Budgetary Limitations)** – बजट पर्यवेक्षण का एक प्रभावशाली साधन है, क्योंकि इससे पर्यवेक्षक यह निश्चित कर सकता है कि क्या सम्बन्धित इकाई ने बजट की सीमाओं में रहकर ही खर्च किया है या इससे अधिक खर्च किया है। बजट में कई बार समय की सीमा भी लाद दी जाती है। क्षेत्रीय एजेन्सियों को उपबन्धों की सीमाओं के अन्दर रहकर ही कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार उच्चाधिकारियों का अधीनस्थ अधिकारियों तथा क्षेत्रीय एजेन्सियों पर नियन्त्रण प्रभावशाली हो जाता है, क्योंकि इन एजेन्सियों को अपनी इच्छानुसार धन व्यय करने की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती है।

4. **आधारभूत अधीनस्थ कर्मचारी वर्ग का अनुमोदन (Approval of Key Subordinate Personnel)** – सरकार के भिन्न–भिन्न विभागों में भर्ती करने की स्वीकृति मुख्य कार्यपालिका (बैपमि•मबनजपअम) द्वारा दी जाती है। संगठन के कुछ महत्वहीन पदों को छोड़कर अन्य सभी पदों की भर्ती की स्वीकृति प्राप्त करनी आवश्यक होती है। प्रायः सभी देशों में कर्मचारियों की भर्ती का कार्य लोक सेवा आयोगों द्वारा किया जाता है।

5. **कार्य की प्रगति सम्बन्धी प्रतिवेदन प्रणाली (Reporting System on Work Progress)** – पर्यवेक्षण करते समय विभिन्न इकाइयों द्वारा अपनी गतिविधियों एवं क्रियाकलापों द्वारा भेजी गई रिपोर्टों का अध्ययन किया जाता है। संगठन की भिन्न–भिन्न इकाइयाँ समय–समय पर मुख्य कार्यालय में रिपोर्ट भेजती रहती हैं। सप्ताह में भेजी जाने वाली रिपोर्ट को साप्ताहिक रिपोर्ट, एक मास में भेजी जाने वाली रिपोर्ट को मासिक रिपोर्ट, छह मास में भेजी गई रिपोर्ट को छमाही रिपोर्ट तथा एक वर्ष में भेजी जाने वाली रिपोर्ट को वार्षिक रिपोर्ट कहते हैं। पर्यवेक्षण करने वाला अधिकारी इन रिपोर्टो की जाँच–पड़ताल करके संगठन के परिणामों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार प्रतिवेदन संगठन क कर्मचारियों तथा इसकी अधीनस्थ इकाइयों पर पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण रखने का बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली ढंग है।

6. **परिणामों का निरीक्षण (Inspection of Results)** – किसी भी संगठन की गतिविधियों की देख–रेख करने के लिए निरीक्षण एक प्रभावशाली यन्त्र है। प्रशासन की कार्य कुशलता में सुधार करना तथा विद्यमान नियमों–विनियमों का अनुपालन सुनिश्चित करना निरीक्षण के मुख्य उद्देश्य हैं। सिर्फ दोष निकालना ही

निरीक्षण नहीं होता। कर्मचारियों के रास्तों में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के तरीके सुझाना भी निरीक्षण के अन्तर्गत आता है। निरीक्षण प्रायः निम्नलिखित तीन एजेन्सियों द्वारा किया जाता है–

1. उच्च अधिकारियों द्वारा (By Higher Officials)
2. मुख्य कार्यालय के निरीक्षण अधिकारियों द्वारा (By Inspectors of Head Office)
3. ब्राह्य निरीक्षण एजेन्सी द्वारा (By Externatl Agency)

पर्यवेक्षक के गुण (Attributes of Supervisor) : 1. जन–सम्पर्क व्यवहार में प्रशिक्षित। 2. कार्य की विषय–वस्तु का विशेष ज्ञान। 3. अच्छी शैक्षणिक योग्यताएं। 4. कार्य से प्रेम। 5. कर्मचारियों को काम समझाने की योग्यता। 6. साहस और सहनशीलता। 7. चरित्रवान्। 8. प्रशासकीय योग्यताएं। 9. भावनात्मक नियन्त्रण 10. निष्पक्षता व ईमानदारी

7. नेतृत्व
(Leadership)

अर्थः– नेतृत्व किसी संगठन के सफलतापूर्वक काम करने और इसके लक्ष्यो व उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनिवार्य है। किथ डैविस कहते है ''बिना नेतृत्व के कोई भी संगठन महज मनुष्यो और यंत्रो की एक भीड़ हैं, नेतृत्व संभावना को वास्तविकता में बदलता है यह वह निर्णायक काम है जो सभी उन संभावनाओ को सफल बनाता है जो किसी संगठन और उसके लोगो में निहित है।'' जैसा की हिकस व गुलेट कहते है ''ये शब्द नेता और प्रबंधक अनिवार्य रूप से अदल–बदल कर नही इस्तेमाल किए जा सकते क्योकि नेतृत्व प्रबंधन का एक उपवर्ग है, एक नेता को दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करने की जरूरत होती है। उसके लिए एक प्रबंधक के सभी कार्यो को करना जरूरी नहीं होता।'' इस प्रकार नेतृत्व का प्रमाण चिह्न है दूसरों को अनुसरण करने के लिए प्रभावित करने की क्षमता।

परिभाषाएँ :– वारेन बेनिस – ''नेतृत्व का एकमात्र सुनिश्चित गुण नेताओ की एक दुरगामी सोच का निर्माण एवं अनुभव करने की क्षमता है।''

बरनार्ड – नेतृत्व का आशय व्यक्तियों के व्यवहार के उस गुण से है जिनके द्वारा वे किसी संगठित प्रयास में लोगो को उनकी गतिविधियों में मार्गदर्शित करते हैं।''

मुनी – ''नेतृत्व वह रूप है जिसे प्राधिकारी तब धारण करता है जब वह प्रक्रिया में प्रवेश करता है।

एम. पी. फॉलेट – एक नेता किसी संगठन का अध्यक्ष या किसी विभाग का मुखिया नहीं होता अपितु एक ऐसा व्यक्ति होता है जो एक स्थिति के चारो और देख सकता है और यह समझता है कि एक स्थिति से दूसरी स्थिति तक कैसे गुजरना है।''

टेरी – ''नेतृत्व ऐच्छिक रूप से परस्पर उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संघर्ष हेतू लोगो को प्रभावित करने की गतिविधि है।

प्रकृति :– एल.ए.एलेन – उन्होंने व्यक्तिगत नेतृत्व और प्रबंधन नेतृत्व मे भेद किया है वे कहते है कि कोई व्यक्ति व्यक्तिगत नेतृत्व के प्रतिभा के साथ पैदा होता है। उसे प्रबंधन नेतृत्व सिखना पड़ता है।

चेस्टर बरनार्ड – उनके अनुसार, नेतृत्व तीन चीजों पर निर्भर करता है – व्यक्ति, अनुसरण कर्ता और स्थितियां।

एम. पी. फॉलेट – वे कहती है कि नेता केवल समूह को प्रभावित ही नही करता बल्कि स्वयं भी उससे प्रभावित होता है। उन्होंने इस परस्पर संबंध को गोलाकार प्रतिक्रिया कहा। वे कहते है नेता समूह के साथ क्या करता है हमें इसके बारे में ही नहीं बल्कि इसके बारे में भी सोचना चाहिए की समूह नेता के साथ क्या करता है। वह निम्न तीन प्रकार के नेतृत्व में भेद करते है :– 1. पद का नेतृत्व, नेता ओपचारिक प्राधिकार के किसी पद पर होता है। 2. व्यक्ति का नेतृत्व अर्थात् नेता के पास शक्तिशाली व्यक्तिगत गुण है। 3. कार्य का नेतृत्व अर्थात् नेता के पास पद भी है और व्यक्तितव भी।

फॉलेट ने टिपण्णी की केवल वे लाग जिनके पास कार्यात्मक ज्ञान है आधुनिक संगठनों में नेतृत्व करते है।

मिलेट – नेतृत्व अक्षर परिस्थितयों द्वारा बनता और बिगड़ता है। उनके अनुसार नेतृत्व की अनिवार्य परिस्थिति दोहरी है – राजनीतिक और संस्थागत। प्रशासनित नेतृत्व की राजनीतिक स्थितियों का अर्थ है – बाह्य राजनीतिक निर्देशन और नियंत्रण के प्रति क्रियाशील होना। दूसरी ओर, प्रशासनिक– नेतृत्व की संस्थागत स्थितियों का अर्थ

है– किसी प्रशासनिक एजेंसियों को वास्तविक सुचारू व्यवस्था में रखने के आंतरिक कार्य की जरूरतों के प्रति क्रियाशील होने की आवश्यकता है।

प्रभाव के स्त्रोत :– नेता के प्रभाव या शक्तियों के निम्न स्त्रोत है।

1. बाध्यकारी शक्ति :– यह भय पर आधारित होती है । यह नेता की सोपे गए कार्यो को पूरा न करने वाले अपने अनुयायियों को दंडित करने की क्षमता होती है। उदाहरण के लिए निलम्बण, वेतन कटौती, पदावनति आदि।
2. पुरस्कृत करने की शक्ति :– यह बाध्यकारी शक्ति के विपरित होती है यह नेता की अपने अनुयायियों को सकारात्मक रूप से पहचानने तथा उन्हे उपयुक्त पुरस्कार देने की योग्यता होती है ऐसे पुरस्कार मुद्रिक या गैर–मुद्रिक हो सकते है।
3. वैधता शक्ति :– यह शक्ति संगठनात्मक पदानुक्रम में नेता की स्थिति से पैदा होती है अनुयायी नेता की शक्ति को स्वीकार करते है उदाहरण के लिए एक प्रबंधक को एक सुपरवाईजर की तुलना मे अधिक वैधता शक्ति प्राप्त होती है।
4. विशेषज्ञता शक्ति :– यह नेता के ज्ञान, विशेष कौशल, विशेष अनुभव या संक्रातिक सूचनाओं की उसकी जानकारी पर आधारित होती है। इन गुणविशेषताओ के कारण नेता अनुयायियों से सम्मान और निष्ठा प्राप्त करते है।
5. उद्धरण शक्ति :– यह व्यक्तिगत आकर्षण पर आधारित होती है जो एक नेता अपने अनुयायियों के लिए धारण करता है। अनुयायी नेता के साथ पहचाते जाते है और नेता को अपने आदर्श व्यक्ति के रूप में देखते है।

नेतृत्व की शैलियां :– 1. निरंकुश शैली :– इसे नेतृत्व की प्रभुत्वपूर्ण या निर्देशात्मक शैली भी कहते है इस शैली में संपूर्ण प्राधिकार नेता के हाथ में केंद्रित होता है। वह सभी नितियां तय करता है वह अधीनस्थो का आदेश देता है और उनसे पूर्ण आज्ञाकारिता की माँग करता है। वह पुरस्कार या सजा देता है।

2. जनतांत्रिक शैली :– नेतृत्व की भागीदारी शैली के नाम से भी जानी जाती है इस शैली मे नेता अधीनस्थों को निम्न निर्माण की प्रक्रिया मे भाग लेने की आज्ञा देता है सभी नितियां और निर्णय ऐसी समूह चर्चाओं से ही निकलते है। संचार मुक्त रूप प्रभावित होता है और बहु निर्देशात्मक होता है। यह शैली प्रशासन के मानव संबंध (नव कलासीकिय) उपागम के युग में लोकप्रिय हुई।

अहस्तक्षेप शैली :– इससे नेतृत्व की नियंत्रण मुख शैली के रूप में भी जाना जाता है। इस शैली में नेता अधीनस्थों को उनके कामों में पूर्ण स्वतंत्रता देता है वह उन्हे अपने लक्ष्य तय करने और उन्हे प्राप्त करने की अनुमति देता है। दूसरे शब्दों में इस शैली में नेता को न्यूनतम या शून्य भागीदारी के साथ सामूहिक या व्यक्तिगत निर्णय के लिए पूर्ण आजादी होती है।

नेतृत्व के कार्य :– 1. संस्थागत अभियाण व भूमिका को परिभाषित करना। सांगठनिक लक्ष्य तय करना और नितियां निर्धारित करना। 2. उद्देश्य का संस्थागत समावेश अर्थात् निती के अर्थ को संगठन के निम्नतर स्तरों तक जाने में मदद् करना। 3. संस्थागत अखडंता की रक्षा। 4. आंतरिक विवादों की व्यवस्था। 5. अधीनस्थो को सक्रीय करने में उतप्रेरक की भूमिका निभाना। 6. संगठन के प्रतीक के रूप में कार्य करना। 7. साधनों का कुशल प्रयोग करना। 8. अनुसरण कर्ताओ को समस्याओं का सामना करने की स्थिति में सुरक्षा देना। 9. पुर्वनुमान लगाना।

नेतृत्व के गुण :– 1. जीव क्षमता और सहन शक्ति। 2. निर्णायकता। 3. जिम्मेदारी लेने की इच्छा। 4. निरन्तर

व्यक्तिगत विकास का प्रदर्शन। 5. कार्यवाही के प्रति नियम निष्ठ होना। 6. उपयुक्त अधीनस्थ प्राप्त करने का प्रयास करना। 7. अच्छा स्त्रोता होना। 8. अच्छी व बुरी दोनो खबरो का स्वागत करना। 9. जनतांत्रिक सरकारों में राजनीतिक प्रक्रियाओं ओर जिम्मेदारियों का सम्मान करना। 10. आत्म विश्वास होना।

नेतृत्व के सिद्धान्त या उपागम :– 1. विशेषता उपागम : यह उपागम कहता है कि कोई व्यक्ति अपनी विशेषताओं की वजह से नेता बनता है। इसका सरोकार नेताओ के व्यक्तितव की विशेषताओं की पहचान से है। शुरूआत में विशेषता सिद्धान्त मानता था कि नेता पैदायशी होते है, वे बनते नही। यह नेतृत्व के महा मानव सिद्धांत के रूप में लोकप्रिय हुआ। बाद में व्यवहारवादी अध्ययनों ने खोजा की नेतृत्व की विशेषताएं पुरी तरह जन्मजात नहीं होती बल्कि उन्हे शिक्षण और अनुभव से भी हासिल किया जा सकता है।

2. व्यवहारवादी उपागम :– विशेषता उपागम की तरह इस पर ध्यान केन्द्रित करने की बजाएं की नेता क्या है, व्यवहारवादी उपागम इस बात पर ध्यान केन्द्रित करता है कि नेता क्या करते है। व्यवहारवादी अनुसंधान कर्ताओ ने यह पता लगाने की कोशिश की नेता क्या करते है, वे कैसे नेतृत्व करते है, वे कैसा व्यवहार करते है, वे अधीनस्थों को कैसे प्रेरित करते है वे कैसे संचार स्थापित करते है, इत्यादि।

3. स्थितिगत उपागम :– विशेषता और व्यवहारवादी दोनों ही उपागम नेतृत्व की एक संपूर्ण और संताषजनक सिद्धांत दे पाने में असफल रहे क्योंकि उन्होंने नेतृत्व की प्रभाविता के निर्धारण में स्थितिगत कारणों की उपेक्षा की। इसलिए अनुसंधानकर्ताओं ने अपना ध्यान नेतृत्व के स्थितिगत आयाम की तरफ मोड़ा। उन्होंने बल देकर कहा कि नेतृत्व की प्रभाविता नेता की विशेषताओं और व्यवहार के अतिरिक्त विभिन्न स्थितिगत कारकों द्वारा निर्धारित होती है। यह उपागम मानता है कि नेतृत्व विभिन्न स्थितिगत परिवर्ती कारकों से प्रभावित होता है इसलिए एक स्थिति से दूसरी स्थिति में भिन्न होता है। यह नेतृत्व को नेता, अनुसरणकर्ता, कार्यस्थिति, परिवेश इत्यादि जैसे तमाम स्थितिगत परिवर्ती कारकों के गतिमान रूप से घुलने–मिलने के अर्थो में समझती है। इस तरह इस उपागम के अनुसार, नेतृत्व बहुआयामी होता है।

8. संचार
(Communication)

संचार प्रशासन का एक ऐसा महत्त्वपूण सिद्धान्त है जिसके बिना प्रशासनिक संगठन का संचालन किया जाना असंभव है। संगठन सरकारी हो या गैर सरकारी, उसके उद्देश्यों की सफलता के लिए प्रभावशाली संचार व्यवस्था आवश्यक होती है। इन संगठनों म कार्य करने वाले लोग यदि संगठन के उद्देश्यों, नीतियों और पृष्ठभूमि परिस्थितियों को समझ लें तो वे उस संगठन में अधिक प्रभावशाली तरीके से कार्य कर सकते हैं। किन्तु यह संचार के बिना संभव नहीं हैं। संचार के अभाव में संगठन के कर्मचारियों और संगठन के उद्देश्यों में एकरूपता स्थापित नहीं हो पाती है। संगठन और उसके कार्यकर्ताओं के मध्य विश्वास प्राप्त करने के लिए उस अभियान का अध्यक्ष जो भी कार्य योजना तैयार करता है वह संचार के बिना न तो कार्यकताओं को संसूचित होती है और न ही जनता तक उनके बारे में कोई सूचना पहुंच पाती है। संगठन के प्रभावशाली आँकलन के लिये संचार का प्रभावी होना आवश्यक है। किसी भी संगठन की प्रशासकीय कार्यकुशलता संगठन के द्वारा आँकी गयी संचार की व्यवस्थाओं पर निर्भर करती है। प्रशासनिक अधिकारियों का सर्वाधिक समय इसी कार्य में लगा होता है। संचार का सम्बन्ध प्रशासन के अन्य पक्षों यथा नियोजन, पर्यवेक्षण मन्वय, निर्णय लेने इत्यादि से निकट का है।

चेस्टर बर्नार्ड ने सही कहा कि संचार से सहायता प्राप्त नहीं होती, जिसे समझा न जा सके। इसी प्रकार टीड के अनुसार तरह–तरह के मस्तिष्कों को एक सामान्य उद्देश्य प्राप्ति के लिए एक दूसरे के पास लाना होता है और यह कार्य संचार की सहायता के बिना किसी भी प्रशासनिक संगठन में सम्भव नहीं। प्रभावी संचार के अभाव में प्रभावी पर्यवेक्षण, नेतृत्व और नियंत्रण नहीं हो सकता। यह सत्य है कि जो प्रशासक संचार कार्य में श्रेष्ठ होते हैं वे प्रभावी प्रशासक सिद्ध होते हैं और जिन प्रशासकों का संचार निम्न श्रेणी का होता है वे प्रशासन तंत्र में अपनी छाप नहीं छोड़ पाते । संचार के इसी महत्त्व के कारणों ने इसे प्रशासकीय संगठन की रक्तधारा कहा है। विद्वान पिफनर इसे प्रबन्धन का ह्रदय घोषित करते हैं।

संचार का अभिप्राय

Meaning of Communication

दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य विचारों के आदान–प्रदान को संचार कहा जा सकता है। यह एक ऐसी वैयक्तिक प्रक्रिया है जिसमें लोगों के मध्य व्यवहार का आदान–प्रदान होता है। संचार शब्द का प्रयोग प्रायः ज्ञान के प्रसार या सूचना भेजने के अर्थ में किया जाता है। किन्तु व्यापक अर्थ में यह केवल सूचना के आदान–प्रदान का सूचक ही नहीं हैं बल्कि उस सूचना को ग्रहणकर्ताओं ने समझ लिया है, इस बात का द्योतक है। वस्तुतः टीड का यह विचार सही है कि संचार का लक्ष्य समान विषयों पर मस्तिष्क में स्थापित करना है।

शब्द कोष के अनुसार, "सचार'' से अभिप्राय सूचना देना या समाचार देना है। लोक प्रशासन में इस शब्द का कुछ विस्तृत अर्थ लिया जाता है। संचार को परिभाषित करते हुए महत्त्वपूर्ण विद्वानी ने निम्नलिखित परिभाषाएं दी हैं जिनके आधार पर संचार को भली–भांति समझा जा सकता है।

मिलेट के अनसार ''किसी सांझे प्रयोजन की साझा समझ'' (Communication means shared understanding of shared purpose) संचार है।

इस प्रकार संचार का अर्थ केवल सूचना देना नहीं बल्कि समझना है। संचार में विचारों, का आदान–प्रदान सम्मिलित

है और इसमें विचारों की साझेदारी की अपेक्षा की गयी है। लारेन्स एप्पलवी ने संचार को परिभाषित करते हुए लिख है कि संचार वह प्रक्रिया है जिससे एक व्यक्ति अपने विचार से दूसरे को अवगत कराता है।''

(The Process where by one person makes his ideas and feelings known to another.)

इसी प्रकार मैक फारलेण्ड ने इसे मानव समुदाय के बीच अर्थ पूर्ण अन्तक्रिया की प्रक्रिया (As the process of meaningful interaction among human beings) के रूप में देखा है।

हरमन और जेलदा रूडमन ने लिखा है कि ''प्रबन्ध और मानव व्यवहार के मध्य सम्बन्ध का पुल बनाने का काम संचार करता है। (Communication is the underlying medium of bridging the route between human behaviour and management)

इनकी मान्यता है कि किसी भी संगठन में उपलब्धियों और उत्पादकता की सफलता श्रेष्ठ संचार के साधनों पर निर्भर करती है।

प्रशासनिक संगठन में अच्छे कार्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सफल संचार की आवश्यकता है। सफल सचार आसान नही होता। इसके लिये एक व्यक्ति में अपने विचारों को दूसरे व्यक्ति के सम्मुख पूर्ण रूप से प्रकट करने की क्षमता होनी चाहिए और यह तभी संभव है जब उस व्यक्ति के विचार पूर्ण रूप से स्पष्ट और परिपक्व हो। संचार द्वारा निर्णय लेने क कार्य पर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और निर्णय कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो जब तक उसका सही संचार नहीं किया जाये तब तक उसकी सफलता संदिग्ध रहती है।

संचार के तत्व

Elements of Communication

मिलेद और रेडफील्ड के अनुसार प्रशासनिक संचार व्यवस्था में निम्नांकित तत्व पाये जाते हैं

1. संचार करने वाला (A Communicator)

सामान्यतः लोक प्रशासन में संचार का कार्य प्रशासक एवं उसके सहयोगी अधिकारियों द्वारा किया जाता है। सैनिक प्रशासन में प्रत्येक आदेश कमाण्डर के नाम से संचालित होता है। इस तरह संचार में उसके प्रेषित भेजने वाला या बोलने वाला संचारक प्रमुख तत्व है।

2. एक से दूसरे को देना (Transmission Procedure)

संचार का दूसरा तत्व है एक व्यक्ति द्वारा निर्देश को दूसरे व्यक्ति को प्रेषित किया जाना या संदेश कहना, भेजना अथवा निकालना। संचार के लिए संगठन में कोई माध्यम अपनाया जा सकता है। किन्तु सबसे उपयुक्त माध्यम वह होता है जिसे प्रायः प्रयोग में लाया जाता है।

3. प्राप्तकर्ता (Recipient)

संचार के लिए उसके श्रोता या प्राप्तकर्ता का होना अनिवार्य है अर्थात् सन्देश जिसे भेजा गया उसका प्राप्तकर्ता संचार का एक महत्वपूर्ण तत्व है।

4. उत्तर (Response)

संचार में सन्देश प्राप्तकर्ता संदेश का प्रत्युत्तर या उसके द्वारा क्रिया या उसके जवाब का होना आवश्यक है। संचार में उसकी प्रतिक्रिया या उसका उत्तर आमतौर पर औपचारिक रूप से दिया जाता है।

उपर्युक्त विद्वानों मिलेट और रेडफील्ड ने संचार के प्रकारों अर्थात् आदेश, नियम, मैनुअल, पत्र प्रतिवेदन इत्यादि को भी संचार का एक आवश्यक तत्व माना है।

इन समस्त तत्वों में संचार करने वाला और संदेश करने वाला, महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार संचार को एक ऐसी प्रणाली के रूप में मान्यता दी जा सकती है। जिसमें एक सिरे पर सन्देश प्रसारक और दूसरे सिरे पर संदेश प्राप्तकर्ता होता है। इसमें इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि जो संदेश दिया गया है उसे उसी रूप में प्राप्तकर्ता द्वारा ग्रहण किया जाये। सन्देश का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि जिस रूप में और जिस भाव तथा उद्देश्य को लेकर वह प्रसारित किया गया है उसे प्राप्त करने वाला भी उसी रूप में समझे और ग्रहण करे। अनेक बार ऐसा होता है कि जल्दबाजी में संदेश के सार को ठीक तरह से ग्रहण नहीं किया जाता तो ऐसी स्थिति में अनर्थ हो सकता है। ऐसी स्थिति में संदेश प्रसारक और प्राप्तकर्ता दोनों के द्वारा इस संदेश में सावधानी अपेक्षित होती है।

संचार के प्रकार

Types of Communication

जिस दिशा में संदेश का संचार किया जाता है उस दृष्टि से संचार को निम्नांकित तीन प्रकारों में बांटा जाता है

(1) ..... से निम्नगामी संचार

(2) निम्न ..... उर्ध्वगामी संचार, और

(3) सम–स्तरीय संचार।

उर्ध्व से निम्नगामी संचार (Downward Communication)

संगठन के सर्वोच्च स्तर या पद सोपान के उच्च स्तरों पर जो निर्देश या संदेश निर्णय के रूप में उत्पन्न होते हैं उन्हें संगठन की निम्न पद सोपानात्मक श्रृंखलाओं तक पहुंचाने की गतिविधियों को उर्ध्व से निम्नगामी संचार कहा जाता है। उच्च अधिकारियों द्वारा अपने अधीनस्थ अधिकारियों को जो प्रत्यायोजन किया जाता है वह इस संचार का एक उदाहरण माना जा सकता है। इसे उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ अधिकारियों के मध्य संचार के रूप में भी मान्यता दी जा सकती है।

निम्न से उर्ध्वगामी संचार (Upward Communication)

इस प्रकार के संचार में संगठन की अधीनस्थ पद सोपान श्रृंखलाओं से संदेश उच्च अधिकारियों को सम्प्रेषित किया जाता है। प्रायः उच्च अधिकारियों को भेजे जाने वाले इस संचार में अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रस्ताव प्रतिवेदन, अनुशंसाए या सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं। यह संदेश प्रकृति से निर्देशात्मक नहीं होते इनमें कोई पहल किये जाने के प्रस्ताव भी नहीं होते मात्र सुझाव हो सकते हैं जिन पर वे उच्च अधिकारियों से स्वीकृति चाहते हैं।

सम–स्तरीय संचार (Lateral Communication)

किसी संगठन के समान स्तरीय कार्मिकों में संदेश का जो आदान–प्रदान होता है उसे समस्तरीय संचार कहा जा सकता है। यह संचार एक ही संगठन के सम–स्तरीय या भिन्न अभिकरणों के सम–स्तरीय कर्मचारियों के मध्य हो सकता है। इस प्रकार के संचार का संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में विशेष महत्त्व होता है। यदि किसी संगठन के कर्मचारी एक एकीकृत इकाई के रूप में काम करते हैं तथा प्रायः उनके मध्य संगठन के उद्देश्यों, कार्य की प्रकृति और प्रक्रियागत जटिलताओं के बारे में संदेश का आदान–प्रदान होना स्वाभाविक होता है। ऐसा किये जाने से संगठन के उद्देश्य प्राप्त करने में आसानी होती है। विद्वान फ्रेडलुथांस ने इसे अतक्रियात्मक संचार भी कहा है। इस संचार के मूल कार्यों में समन्वय, समस्याओं के समाधान, सूचनाओं का आदान–प्रदान और तनावों को सुलझाने के उद्देश्य प्रमुख होते हैं।

कतिपय विद्वानों ने संचार को आंतरिक और बाह्य संचार के रूप में भी परिभाषित और विभाजित किया है।

आंतरिक एवं बाह्य संचार (Internal and External Communication)

आंतरिक संचार किसी एक संगठन और उसके कर्मचारियों के मध्य होता है। किसी संगठन के उद्देश्यों को शीघ्र पूरा करने के लिए इसका विशेष महत्त्व है। इसके माध्यम से संगठन की प्रक्रियाओं की जटिलता को कम किया जा सकता है। ऐसे संगठनोंः जिनका ढांचा भौगोलिक दृष्टि से पूरे देश या अनेक राज्यों में फैला हुआ है उनके उद्देश्यों के प्रति तारतम्य, संगीत और समन्वय प्राप्त करने के लिए आतरिक संचार का प्रबल महत्त्व है। डाक, तार, रेलवे और विदेश मंत्रालयों की संरचना ऐसी है जिसका पर्याप्त विस्तार होता है, अतः इस. प्रकार के संगठनों में जब तक नीतियों, कार्यक्रमों और परिवर्तित निणर्यों के प्रति संचार के माध्यम से शीघ्र संदेश का आदान–प्रदान न हो तब तक उन संगठनों की सफलता की आशा नहीं की जा सकती। संगठन की केन्द्रीय इकाई और राज्य या दूरस्थ इकाई के मध्य इस प्रकार के संचार के माध्यम से संदेशों का आदान–प्रदान होता है और यदि संचार पर ध्यान न दिया जाये तो न तो निर्णयों से इकाइयों को संसूचित किया जाना संभव हो सकेगा और न ही उनका कार्यान्वयन संभव होगा। इस दृष्टि से संगठन में आंतरिक संचार का, जो उर्ध्व और समान स्तरीय सभी प्रकार का हो सकता है, विशिष्ट महत्त्व है।

बाह्य संचार से अभिप्राय यह है कि कोई संगठन जब अपने उद्देश्यों नीतियों और कार्यक्रमों के बारे जनता को परिचित कराना चाहता है तो बाह्य सचार के माध्यम से यह संभव हो पाता है। इसे लोक सम्पर्क भी कहा जा सकता है। लोक सम्पर्क की परिधि में आने वाले इस संचार का भी आधुनिक युग में प्रशासनिक संगठनों में विशेष महत्त्व है।

संचार के साधन

Means of Communication

संचार को प्रसारित करने के कतिपय साधन इस प्रकार हैंः

(क) व्यक्ति सम्पर्क (Personal Contacts):

किसी भी संगठन में अधिकारी और अधीनस्थों के मध्य संचार का यह पर्याप्त प्रभावी तरीका है। संचार करने वाले दोनों पक्ष आमने सामने, टेलीफोन, टेलीप्रिंटर, वायरलेस इत्यादि के माध्यम से संदेश का संचार या आदान–प्रदान कर सकते हैं । संचार के अत्याधुनिक साधनों के कारण संगठनों की दूरी अब कम हो गयी है और संदेश का संचार सुगम हो गया है। व्यक्तिगत संपर्क में साधनों के उपयोग की अपेक्षा आमने–सामने बातचीत के माध्यम से संदेश के संचार का प्रभावी तरीका माना जाता है। यद्यपि इस विधि को विस्तृत संगठनों में अपनाया जाना कठिन होता है।

व्यक्तिगत सम्पर्क की दूसरी प्रभावी विधि सम्बद्ध लोगों की औपचारिक बैठक का आयोजन किया जाना है। ऐसी बैठकें विधिक रूप से एक निश्चित अंतराल के पश्चात हो सकती है या उन्हें आवश्यकता के अनुसार आहुत भी किया जा सकता है।

(ख) औपचारिक पत्राचार (Formal Correspondence)

आधुनिक लोक प्रशासन में पत्र व्यवहार संचार का एक ऐसा तरीका है जो सामान्यतः उपयोग में लाया जाता है। संचार का यह तरीका ईसा पूर्व तीसरी और चौथी शताब्दी में भी प्रयोग में लाया जाता था। आधुनिक लोक प्रशासन में भी लिखित पत्र व्यवहार के माध्यम से संचार एक अपरिहार्य प्रणाली बन गया है। प्रशासनिक प्रक्रिया अब इतनी जटिल हो गयी है कि उत्तरदायित्व के निर्वाह और निर्धारण के लिए निर्णयों

और संदेशों को लिखित रूप में रखा जाना आवश्यक हो जाता है। आजकल तो कार्यालय की समस्त प्रणाली पत्रावलियों के माध्यम से संचालित की जाती है। यद्यपि इस प्रणाली के कारण आधुनिक सरकारों को फाईल या कागज की सरकार भी कहा जाने लगा है और इसी कारण इस पर लाल फीताशाही के दोष भी लगाये जाते हैं। किन्तु इन समस्त बातों के बावजूद औपचारिक पत्र व्यवहार संचार का एक महत्त्वपूर्ण तरीका है।

(ग) फार्म (Forms)

विभिन्न प्रकार की सामान्य सूचनाओं के बारे में प्रपत्र छपा लिया जाता है और उनके माध्यम से संदेश एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने की यह प्रणाली लोक प्रशासन में अब अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी है।

(घ) निर्देश (Instructions)

विभिन्न प्रकार के निर्देश अथवा आदेश कार्यालयों में निर्देश पत्रों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजे जाते हैं। यह निर्देश प्रायः लिखित परिपत्र के जरिये भेजे जाते हैं। इन निर्देशों के माध्यम से किसी संगठन में कार्य करने वाले अधिकारियों कर्मचारियों के कर्त्तव्यों का निर्धारण भी किया जाता है।

(ड) आंतरिक प्रचार (Internal Publicity)

प्रायः सभी प्रशासनिक संगठनों के बारे में सूचनाओं के आदान–प्रदान के लिए कतिपय नोटिस, परिपत्र, स्टाफ जनरल और सामयिक प्रतिवेदन तैयार किये जाते हैं। इन सामग्रियों में संगठन के उद्देश्यों, कार्यवाहियों, कार्यक्रमों, योजनाओं, गतिविधियों और उपलब्धियों तथा संगठन कर्मचारी वर्ग द्वारा वित्त इत्यादि का विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

संचार की बाधाएँ

Difficulties of Communication

संगठन के सफल कार्यकरण हेतु संचार की जितनी आवश्यकता है उसके प्रभावी होने के मार्ग में उतनी ही बाधाएँ हैं। इनमें प्रमुख इस प्रकार हैं:

(1) भाषा सम्बन्धी समस्या (Language Difficulty)

हमारे विचारों के आदान–प्रदान और सम्प्रेषण में भाषा एक सशक्त माध्यम का काम करती है। किन्तु विभिन्न भाषा बोलने वाले देश में, विभिन्न भाषाओं को समझने वाले संगठन में यह भाषा ही संचार के माध्यम में एक कठिनाई बन जाती है। एक प्रदेश की भाषा दूसरे प्रदेश में समझ पाना, हमारे देश में एक व्यावहारिक कठिनाई है। इसी प्रकार, इस सन्दर्भ से एक कठिनाई यह भी है कि प्रशासन की भाषा को जनसाधारण नहीं समझ पाता है। प्रशासन के कामकाज में उपयोग की जाने वाली भाषा इतनी तकनीकी और जटिल होती है कि आम आदमी समझ नहीं पाता है। न्यायालय, राजस्व विभाग और इसी तरह के जन साधारण से जुड़े भागों में जो प्रपत्र तैयार किये जाते है उनकी जटिल और तकनीकी भाषा प्रायः संचार में बाधा बन जाती है।

(2) मस्तिष्क की दिशा और स्थिति (Frame of Mind)

प्रायः प्रत्येक व्यक्ति की अपनी स्थिति और वैचारिक स्थिति संचार को समझने के लिए पृथक–पृथक होती है। यह भी हो सकता है कि एक संदेश का प्रभाव दो भिन्न–भिन्न व्यक्तियों पर उनकी वैचारिक और मनोदशा के अनुसार अलग–अलग पड़े। इस स्थति में यदि भाषागत कठिनाई है तो संदेश और संचार में टूट–फूट होने की और अधिक संभावना हो जाती है। इस प्रकार संदेश देने वाले और ग्रहण करने वाले

लोगों की मनोदशा, स्वभाव और मानसिक स्थिति संचार को समझने और ग्रहण करने के मार्ग में एक विशेष बाधक तत्व का काम करती है। प्रभावी संचार के लिए इस स्थिति के बारे में पूर्व समझ आवश्यक है।

(3) संगठन के आकार तथा दूरी की बाधा (Geographical Distance)

यदि संगठन बड़ा हो, भौगोलिक दृष्टि से दूर तक फैला हो और उसमें कार्यरत कर्मचारियों की संख्या अत्याधिक हो तो उस संगठन में संचार संबंधी बाधाएं उत्पन्न हो सकती हैं। संगठन में जितने अधिक सदस्य होंगे और संचार की प्रक्रिया में संदेश जितने अधिक लोगों के पास होकर गुजरता है उतनी ही अधिक कठिनाई संचार में उत्पन्न हो सकती है।

प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक स्तर पर संचार की विषय–वस्तु में यदि यत्किंचित भी परिवर्तन होगा तो संदेश विफल हो सकता है।

(4) पद सोपान संबंधी बाधाएं (Status Distance)

यह सुविदित है कि प्रत्येक संगठन पद सोपान पर आधारित होता है। संगठन में संदेश पद सोपान की विभिन्न श्रृंखलाओं में नियमपूर्वक गुजरता है। यह संदेश की उर्ध्वगामी और निम्नगामी दोनों स्थितियों में एक आवश्यक प्रक्रिया है। अनेक बार उचित पद सोपान से संदेश प्राप्त न होने के कारण प्राप्तकर्ता उसे ग्रहण करने से औपचारिक या अनौपचारिक रूप से इंकार कर सकता है। इससे संदेश के संचार में विलम्ब तो होता ही है संगठन में आवश्यक विवाद की भी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। संदेश चाहे सत्य ही क्यों न हो किन्तु उसका संचार यदि उपयुक्त पद सोपानात्मक श्रृंखलाओं के माध्यम से नहीं हो रहा है तो उस पर विश्वास न किये जाने के कारण अनेक बार संगठनों को पर्याप्त हानि उठानी पड़ती है। इस प्रकार परिस्थिति–जन यह बाधा संचार के मार्ग में एक संगठनात्मक अंवरोध मानी जाती है।

(5) सैद्धान्तिक बाधाएं (Theoretical Barriers)

प्रत्येक व्यक्ति की पृष्ठभूमि शिक्षा, सामाजिक और राजनैतिक विचारों में भिन्नता होती है, उनके अपने अलग–अलग अनुभव होते हैं। वे सभी अपने सैद्धान्तिक ज्ञान की पृष्ठभूमि और सिद्धान्तों के अनुसार सोच और व्यवहार करते हैं। वे अपनी ही दृष्टि से समस्या की व्याख्या करने लगते हैं और इस स्थिति में उन्हें जो संदेश प्राप्त होता है उसकी भी वे अपने सैद्धान्तिक अनुभव के आलोक में व्याख्या करते हैं जिससे यह हो सकता है कि संदेश की विषय–वस्तु में अकारण ही परिवर्तन हो जाए। प्रत्येक व्यक्ति की यह पृष्ठभूमि संगठन में संचार की प्रमुख बाधा मानी जाती है।

(6) संचार के निश्चित और मान्य सिद्धान्तों का अभाव (Lack of Approved Means of Communication)

संगठन में कार्य औपचारिक व अनौपचारिक दोनों रूपों में होता है। अनेक बार ऐसे अवसर आते हैं जब कार्य का सम्पादन औपचारिक रूप से नहीं हो सकता । पहले से ही समन्वय और संचार अनौपचारिक तरीकों से करना पड़ता है। किन्तु औपचारिक तरीकों के अभाव में संचार की निश्चितता में संशय बना रहता है। यह कारण भी, संचार के प्रभावी होने में एक बाधा बनता है।

विद्वान हरमन एवं जेल्दारूदमन ने भी प्रभावी संचार की निम्न बाधाएँ बतायी हैं–

(1) सन्देश का कमजोर सम्प्रेषण (Poorly Expressed Messages)

(2) सन्देश की गलत व्याख्या (Misinterpretation of Message)

(3) कमजोर ग्राह्यता (Poor Retention)

(4) अभिप्रेरणा का अभाव (Lack of Motivation)

(5) समय पूर्व मूल्यांकन (Premature Evaluation)

(6) भय की भावना (A Sense of Fear)

(7) विचार–विमर्श में विफलता (Failure to Discuss)

इन बाधाओं के निराकरण के लिए उपर्युक्त विद्वानों ने अधिकारियों/कर्मचारियों के विचारों की एकता और सन्देश देने वाले दोनों पक्षों की भावनाओं को समझने तथा संगठन में कार्यकताओं द्वारा किये जाने वाले कार्यों का पूर्व अनुमान और उसकी दिशा को समझने ने नेतृत्व के गुणों पर जोर दिया है।

प्रभावी और अच्छे संचार के लिए आवश्यक बातें : विद्वान टेरी ने प्रभावी और अच्छे संचार मे निम्न तत्वों की अपेक्षा की है –

1. पूर्ण जानकारी स्वयं उपलब्ध करानी चाहिए।
2. परस्पर विश्वास उत्पन्न किया जाना चाहिए।
3. अनुभव के समान आधार की खोज की जानी चाहिए।
4. ऐसे शब्दों का प्रयोग संचार में किया जाना चाहिए जो आपस में सभी को ज्ञात हो।
5. पूर्व प्रसंग ध्यान में रहना चाहिए।
6. सन्देश प्राप्तकर्ता का ध्यान आकृष्ट करना और उसे बनाये रखना चाहिए
7. उदाहरणों तथा दृश्य साधनों को काम में लाया जाना चाहिए और
8. विलम्बकारी प्रक्रियओं के प्रयोग से बचना चाहिए।

इकाई–3

9. प्रशासनिक भ्रष्टाचार
(Administrative Corruption)

भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ है भ्रष्ट अथवा बिगड़ा हुआ आचरण। लोक प्रशासन मे इसका अभिप्राय ऐसे आचरण से है जिसकी आशा लोक सेवको से नहीं की जाती है। यदि लोक प्रशासक अपनी शक्ति, सत्ता एवं स्थिति का प्रयोग जन–सामान्य के लाभों की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत लाभो के लिए करने लगे तो यही भ्रष्ट आचरण माना जाऐगा। ये भ्रष्ट आचरण अनेक प्रकार के हो सकते है। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति का कोई कार्य कर देने या कार्य न करने पर घुस अथवा दुसरे प्रकार का आर्थिक लाभ लेना, अपने संबंधियों को नौकरी दिलाना, भेंट स्वीकार करना, बेईमानी, गबन, रिश्वत, अनुचित एवं अवैध रितियों से पैसा लेना, व्यापारिक संस्थाओ पर इस दृष्टि से एहसान करना ताकि वहा लोक–सेवकों के पुत्र–पुत्रियो को रोजगार मिल सके, अपनी सरकारी स्थिति और प्रभाव का स्वार्थ सिधी के लिए दुरूपयोग करना आदि।

भ्रष्टाचार की परिभाषा भारतीय जन सहिता की धारा 161 मे इस प्रकार की गई है – '' जो व्यक्ति शासकीय कर्मचारी होते हुए या न होने की आशा मे अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए विधिक पारिश्रमिक से अधिक कोई घुस लेता है या स्वीकार करता है अथवा लेने के लिए तैयार हो जाता है या लेने का पर्यत्न करता है या किसी कार्य को करने के लिए उपहार स्वरूप या अपने शासकीय कार्य को करने के किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या उपेक्षा या किसी व्यक्ति की कोई सेवा या कुसेवा का प्रयास, केन्द्रीय या अन्य राज्य सरकार या संसद या विधानमण्डल या किसी लोकसेवक के संदर्भ में करता है तो उसे तीन वर्ष तक के कारा वास का दंड या अर्थ दंड या दोनो दिये जा सकेंगे।''

भ्रष्टाचार से तात्पर्य है कि किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा अपने सार्वजनिक पद अथवा स्थिति का दुरूपयोग करते हुए किसी प्रकार का आर्थिक या अन्य प्रकार का लाभ उठाना। भ्रष्टाचार का अर्थ दो रूपों संकीर्ण एवं व्यापक में किया जाता है। संकीर्ण रूप में इसका अर्थ केवल घुस अथवा आर्थिक लाभ प्राप्त करना माना जाता है। भ्रष्टाचार के व्यापक रूप में अपने निजी स्वार्थ पूर्ण उद्देश्यो के लिए सार्वजनिक पद अथवा सत्ता का दुरूपयोग करते हुए नकद धन राशि अथवा भेटों और उपहारों के रूप में सब प्रकार की बेईमानी से प्राप्त लाभों का समावेश होता है। लोक प्रशासन में इस शब्द का प्रयोग इसी व्यापक अर्थ में किया जाता है।

भारत में भ्रष्टाचार की व्यापकता : किसी ने किसी रूप में भ्रष्टाचार मानव में सदैव कायम रहा है। कौटिल्य ने अपनी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में भ्रष्टाचार के 40 प्रकारों का उल्लेख किया है। उसके शब्दों में, ''जिस प्रकार जीभ पर रखे हुए शहद का स्वाद न लेना असम्भव है उसी प्रकार किसी शासकीय अधिकारी के लिए राज्य के राजस्व के एक अंश का भक्षण न करना असम्भव है।'' प्राचीन एवं मध्यकाल में लोक प्रशासन का क्षेत्र अत्यन्त सीमित था, फलस्वरूप भ्रष्टाचार की कम गुंजाइश थी। वर्तमान युग में लोक प्रशासन के क्षेत्र का विलक्षण विकास होने के कारण भ्रष्टाचार की मात्रा में भी असाधारण वृद्धि हुई है। भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल से ही भ्रष्टाचार देश में सर्वत्र फैल गया। ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापारी जो उस समय प्रशासक भी थे, सम्पत्ति जोड़ने पर उतारू थे। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का तन्त्र भ्रष्ट एवं पतित हो गया था, फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने भारत का प्रशासन अपने हाथों में ले लिया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त राजनीतिक नेताओं और मन्त्रियों के जो गड़बड़–घोटाले प्रकाश में आये हैं उनमें श्री कृष्णा मेनन का जीप काण्ड, उड़ींसा के मुख्यमन्त्री बीजू पटनायक, जम्मू–कश्मीर के मुख्यमन्त्री बख्शी गुलाम मुहम्मद, बिहार के कृष्ण वल्लभ सहाय, पंजाब के मुख्यमन्त्री प्रतापसिंह कैरो, तमिलनाडु की मुख्यमन्त्री जयललिता तथा महाराष्ट्र के मुख्यमन्त्री ए. आर. अन्तुले के मामले उल्लेखनीय हैं।

भारत में भ्रष्टाचार के कारणों का विश्लेषण

भारतीय लोक प्रशासन में रिश्वत एवं भ्रष्टाचार के व्यापक प्रसार में निम्न कारणों ने योग दिया है :

1. भ्रष्टाचार – ब्रिटिश विरासत – उस समय वायसराय या गवर्नर अपने पद से अवकाश ग्रहण करने से पहले देशी रियासतों का दौरा, राजाओं से विदाई लेने के नाम पर किया करते थे, यद्यपि इसका वास्तविक प्रयोजन उनसे भेंट और उपहार प्राप्त करना होता था।

2. युद्धकालीन अभाव तथा नियन्त्रण – द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जब सेना के लिए सरकार भारी परिमाण में अनाज तथा अन्य सामग्री खरीदने लगी तो व्यापारी सरकारी माल के ठेके प्राप्त करने के लिए अधिकारियों की जेब गरम करने लगे।

3. प्रशासन का विस्तार – स्वतन्त्रता के पश्चात् अकस्मात् ही ब्रिटिश एवं मुस्लिम अधिकारियों की एक बड़ी संख्या में कमी हो गयी जिसके फलस्वरूप एक बड़ी संख्या में विभिन्न श्रेणियों में अनुभव एवं योग्यता को ध्यान में रखे बिना भर्ती की गयी। सेवाओं की सुस्थापित परम्पराओं में इन कर्मचारियों की कोई आस्था नहीं थी।

4. नैतिक मुल्यों का हास – विकसित जनसमाज में शहरीकरण एवं औद्योगीकरण पर निरन्तर बल दिया गया, जिससे सामाजिक एवं वैयत्तिक मुल्यों का भौतिक मूल्यों के आगे हास होता है।

5. वेतनों में विषमता – भारत में कर्मचारियों के वेतन में काफी अन्तर है। उच्च वेतनों के फलस्वरूप उच्च अधिकारी आरामदेय जीवन व्यतीत करते हैं। प्रत्येक अधीनस्थ अपने वरिष्ठ अधिकारी का अनुसरण करना चाहता है। यदि उसका वेतन कम होता है तो वह अनुचित साधनों से आमदनी करता है।

6. लालफीताशाही – भारत में सरकारी दफतारों में काम करने की प्रक्रिया बड़ी जटिल तथा विलम्बकारी होती है। इनमें इतने अधिक नियमों, उपनियमों का जाल फैला हुआ होता है कि कोई भी कार्य शीघ्रता से नहीं हो सकता है। लाल फीते से बंधी फाइलों को एक अफसर की मेज से दूसरे अफसर की मेज तक पहुंचने में बड़ा समय लगता है। यह स्थिति रिश्वत और घूस के लिए आधार तैयार करती है।

7. औद्योगिक एवं व्यापारी वर्ग – व्यावसायिक घरानों द्वारा 'सम्पर्क अधिकारियों' एवं सम्बन्ध कायम रखने वाले' व्यक्तियों को बड़ी संख्या में नियुक्त किया जाता है। ये लोग शासकीय कर्मचारियों को अपने निष्कृष्ट उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता प्रदान करने के लिए धन या अन्य लाभ देते हैं।

8. निर्वाचन में पार्टी फण्ड – भारत में चुनाव काफी महंगे होते जा रहे हैं और चुनाव जीतने के लिए राजनीतिक दलों को काले धन की जरूरत पड़ती है। चुनावों में धन की बढ़ती हुई भूमिका के कारण काला धन और भ्रष्ट राजनीतिज्ञ एक–दूसरे के साथ जुड़ गये हैं।

9. दुर्बल नियन्त्रण प्रणाली – भारत की नियन्त्रण प्रणाली पूर्णरूप से गैर– जिम्मेदार, अकुशल और रूग्ण है। भारत में प्रशासनिक कार्य बिना कठोर नियन्त्रण, निरीक्षण एवं चौकसी के रामभरोसे ही चलते हैं, फलस्वरूप भ्रष्टाचार बेलगाम और अबाध रूप से चल रहा है।

10. पुलिस की निष्क्रियता – पुलिस अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन रहती है। जहां उसे पैसे मिलते हैं, वहां तो

सक्रियता दिखाती है, किन्तु जहां अवैध पैसा नहीं दिखाई देता वहां पुलिस पूर्णरूपेण निष्क्रिय हो जाती है।

11. नौकरशाहों का विलासी जीवन – नौकरशाह नेताओं को गुमराह कर भ्रष्ट तरीके से धन कमाने के रास्ते निकाल लेते हैं। इसी धन के आधार पर विलासी जीवन शैली की आदत हो जाती है और इसके लिए उन्हें अवैध धन की बार–बार जरूरत पड़ती है।

प्रशासन में भ्रष्टाचार के विभिन्न रूप

वित्त मन्त्रालय की एक विस्तृत रिपोर्ट (1985) में भ्रष्टाचार के कुछ महत्वपूर्ण स्त्रोतों का उल्लेख किया गया था, जो उल्लेखनीय है :

- लाइसेन्स व परमिट के बदले रिश्वत या राजनीतिक भुगतान।
- प्रशासनिक कार्यवाही को तेज करने के लिए दी जाने वाली 'स्पीड मनी'।
- तमाम सरकारी सेवाओं में ट्रान्सफर, पोस्टिंग के लिए होने वाली 'बिक्री'।
- फैक्टरी इन्सपेक्टर, बॉयलर इन्सपेक्टर, हेल्थ इन्सपेक्टर, टैक्स इन्सपेक्टर सरीखे छोटे–मोटे अफसरों को दी जाने वाली नियमित रिश्वत।
- विभिन्न सरकारी खर्च में सम्पन्न कार्यक्रमों के लिए लीकेज।
- सरकारी ठेकों की प्राप्ति के लिए रिश्वत।
- चुनावी चन्दे।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग ने भ्रष्टाचार के निम्न प्रकारों का उल्लेख किया है :

1. निम्नस्तरीय वस्तुओं का कार्य को स्वीकार करना।, 2. सार्वजनिक धन और भण्डार का दुरूपयोग करना। 3. झूठे दौरे, भत्ते एवं गृह किराया, आदि का दावा करना। 4. अपनी आमदनी से अधिक वस्तुओं को रखना। 5. अनैतिक आचरण। 6. शासकीय कर्मचारियों को व्यक्तिगत कार्यों में प्रयोग करना। 7. शासकीय पद या सत्ता का दुरूपयोग। 8. उपहार ग्रहण करना। 9. आर्थिक लाभ के लिए आय–कर, सम्पत्ति–कर, आदि का कम मूल्यांकन प्रस्तुत करना। 10. विस्थापितों के दावों का गलत मूल्यांकन। 11. आवासी भूमि के हिस्सों में क्रय एवं विक्रय के सम्बन्ध में धोखा देना। 12. स्कूटर एवं कार खरीदने के लिए स्वीकृत अग्रिम धनराशियों का दुरूपयोंग। 13. शासकीय क्वार्टरों का अनधिकृत कब्जा एवं उन्हें अनधिकृत रूप से किराये पर उठाना।

लोक सेवकों के आचरण सम्बन्धी नियम :– 1. अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम, 1954, 2. केन्द्रीय लोक सेवा (आचरण) नियम, 1955, 3. रेल सेवा (आचरण) नियम, 1956।

भ्रष्टाचार निवारण के उपाय :– 1. भ्रष्टाचार के विरोध में जबर्दस्त लोकमत उत्पन्न किया जाना चाहिए ताकि भ्रष्टाचारियों के दुष्कर्मो का भण्डाफोड़ किया जा सके।, 2. चुनाव सुधार किये जाने चाहिए ताकि चुनाव लड़ने में बहुत बड़ी धनराशि व्यय न करनी पड़े। जब तक चुनाव धन से लड़े जाएंगे, तब तक भ्रष्टाचार चलता रहेगा। 3. भ्रष्टाचार के मामलों पर कार्यपालिका के प्रभाव से सर्वथा मुक्त निष्पक्ष न्यायाधीशों द्वारा विचार करने और अपराधियों को कड़ा दण्ड देने की व्यवस्था होनी चाहिए। ओम्बडसमेन जैसी स्वायत संस्था का निर्माण किया जाना चाहिए। 4. मन्त्रियों एवं सरकारी प्रशासकों के लिए निश्चित आचार–सहिंता का निर्माण और उसका पूरी कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए, 5. सरकारी कर्मचारियों को उनके काम के अनुसार पूरा वेतन देने और उनकी नियुक्ति के आधार पर करने की व्यवस्था होनी चाहिए।, 6. सतर्कता आयोग का गठन किया जाना चाहिए।

भारत में भ्रष्टाचार निवारण के साधनों का विकास

सन् 1941 में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने हेतु भारत सरकार ने ''विशेष पुलिस'' की स्थापना की। यह संगठन युद्ध के उपयोग के समान के क्रय–विक्रय में रिश्वत एवं भ्रष्टाचार को रोकने के लिए बनाया गया। सन् 1942 में इसे रेलवे विभाग के भ्रष्टाचार के मामलों की जांच का काम सौंपा गया। 1946 में इसे गृह विभाग का अंग बनाते हुए इसके अधिकारों का विस्तार किया गया। 1953 में इसमें 'भ्रष्टाचार निरोध शाखा' को बढ़ाया गया। 1963 में इसे 'केन्द्रीय जांच ब्यूरो' के एक खण्ड के रूप में स्थानान्तरित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त CVC, CBI, ED, लोकपाल और लोक आयुक्त आदि भी भ्रष्टाचार निवारण के साधनों के रूप में काम करते हैं।

10. शिकायत निवारण संस्थान

(Grievance redressal Institution)

अम्बुड्समैन (OMBUDSMAN)

अम्बुड्समैन की आवश्यकता (Need for Ombudsman)

जब से राज्य की कल्याणकारी गतिविधियों का प्रारम्भ हुआ है, सार्वजनिक कार्यों के प्रबन्ध में राज्य की भूमिका बढ़ती जा रही है। अब तो इसका क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि इसमें मानवीय क्रियाओं के सभी आयाम घिर गए हैं। राज्य की प्रशासनिक मशीनरी मानव–जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करती है और यह प्रभाव कई प्रकार से डाला जाता है, जैसे कार्यकारी नियंत्रण तथा आदेश, परमिट, लाइसेन्स आदि के द्वारा। जहाँ राज्य की मशीनरी पर नागरिक अधिक से अधिक आश्रित होता जा रहा है, वहाँ उसकी कठिनाइयाँ और शिकायतें भी बढ़ती जा रही हैं। प्रशासनिक अकुशलता, जैसे विलम्ब, लाल–फीताशाही, सुस्ती आदि बातें साधारण हो गई हैं। सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया है। अतः प्रशासन में स्वेच्छाचारिता का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। यह अनुभव किया गया है कि उच्च प्रशासनिक अधिकारियों, प्रशासनिक तथा न्यायिक न्यायाधिकारणों, संसद तथा इसकी समितियों के द्वारा शिकायत सुनने के प्रबन्ध या तो उपलब्ध नहीं हैं, अपर्याप्त, अत्यधिक औपचारिक, अत्यधिक महँगे और समय नष्ट करने वाले हैं। अतः यह महसूस किया गया है कि यह अनिवार्य है कि नागरिकों की शिकायतें सुनने की एक ऐसी मशीनरी होनी चाहिए जिस पर खर्च कम हो, जो कम औपचारिक हो और शीघ्र न्याय दिलाए। यह प्रभावी और निष्पक्ष होनी चाहिए, जो जनता में विश्वास उत्पन्न कर सके।

स्वीडन में अम्बुड्समैन (Ombudsman in Sweden)

इसका प्रारम्भ स्वीडन (Sweden) में हुआ जहाँ 1809 के संविधान ने एक अद्वितीय संस्थान अम्बुड्समैन की स्थापना की, ताकि नागरिकों को प्रशासनिक अन्याय अथवा किसी सरकारी अधिकारी द्वारा शक्ति दुरुपयोग से सुरक्षित किया जा सके। ''अम्बड्'' शब्द का अर्थ एक ऐसा व्यक्ति होता है जो किसी अन्य व्यक्ति का प्रतिनिधि या प्रवक्ता हो। स्वीडन में अम्बुड्समैन की नियुक्ति संसद करती है ताकि वह एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में सभी लोक–अधिकारियों– सैनिक, असैनिक तथा न्यायिक, के कार्यों का निरीक्षण कर सके। आजकल वहाँ चार अम्बुड्समैन हैं जिनमें एक को मुख्य अम्बुड्समैन (Chief Ombudsman) कहा जाता है। प्रत्येक अम्बुड्समैन एक सुनिश्चित व्यवसायिक क्षेत्र की देखभाल करता है।

स्वीडन के अम्बुड्समैन की शक्तियाँ बहुत विस्तृत हैं। वह सभी लोक–अधिकारियों का निरीक्षण करता है। यहाँ तक कि न्यायालयों और न्यायिक अधिकारियों को भी उसके क्षेत्र से बाहर नहीं रखा गया। एक अम्बुड्समैन किसी भी प्रशासनिक सत्ता अथवा न्यायालय द्वारा किये जा रहे विचार–विमर्श के दौरान उपस्थित रह सकता है, सभी प्रकार के अभिलेख (Records) की जाँच कर सकता है वह इस बात को देखता है कि प्रशासन विधि और संविधान के अनुकूल चलाया जा रहा है कि लोक–अधिकारी न तो अपनी शक्ति का दुरुपयोग करें और न ही विधि से बाहर प्रयोग करें, कि न्याय उचित और निष्पक्ष ढंग से हो, और नागरिकों की स्वतंत्रताओं और अधिकारों का उल्लंघन न हो।

अम्बुड्समैन को यह भी सत्ता दी गई है कि वह किसी भी पथभ्रष्ट लोक–अधिकारी पर मुकदमा चला सके अथवा उसे अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए किसी गम्भीर लापरवाही के लिए पद से हटाने के लिए उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही की सिफारिश कर सके। यहाँ तक कि अम्बुड्समैन सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों पर मुकदमा चलाने की भी सिफारिश कर सकता है।

स्वीडन की अम्बुड्समैन योजना की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह स्वयं किसी भी अधिकारी को दण्ड नहीं दे सकता। वह कर्मचारी के उच्च विभागीय अधिकारियों को उसके विरुद्ध कार्यवाही करने की सिफारिश कर सकता है। वह किसी अधिकारी के द्वारा पहले से किये निर्णय को उलट या बदल नहीं सकता है, परन्तु वह उचित उच्च अधिकारी को दोषपूर्ण आदेश या निर्णय को बदलने या वापिस ले लेने का परामर्श या सिफारिश कर सकता है। वह व्यक्तिगत दोषों को दूर करने की ही केवल सिफारिश नहीं कर सकता, अपितु नियमों, कानूनों, कार्यविधियों और व्यवहारों में संशोधन का भी सुझाव दे सकता है यदि वह यह देखे कि इनमें कोई दोषपूर्ण है अथवा लोकहित के लिए हानिकारक है।

अम्बुड्समैन को अधिकार है कि वह किसी व्यक्ति की शिकायत पर कार्यवाही शुरू कर सकता है। या स्वयं ही कार्यवाही आरम्भ कर सकता है। वह किसी शिकायत को तुरन्त रद्द कर सकता है यदि वह यह समझे कि शिकायत निराधार, तुच्छ या कष्टप्रद है।

यह ऊपर कहा गया था कि न्यायाधिकारी इसके क्षेत्राधिकार के अधीन होते हैं, परन्तु संसद सदस्यों और मंत्रिमंडल के सदस्यों को इसके क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया है। ऐसा इसलिए किया गया कि यह संस्थान निर्विवाद और राजनीति से दूर रहे।

अम्बुड्समैन विधानमंडल, कार्यकारिणी तथा न्यायपालिका तीनों से स्वतंत्र होता है। इसमें से किसी को अधिकार नहीं कि उसके दैनिक कार्य में कोई हस्तक्षेप कर सके। अम्बुड्समैन की नियुक्ति चार वर्ष की निश्चित अवधि के लिए होती है और उसको पद से केवल तभी हटाया जा सकता है यदि वह संसद का विश्वास खो बैठे। वह संसद के प्रति अपनी वार्षिक रिपोर्ट पेश करता है।

स्वीडन में इस संस्थान की सफलता के उपरांत इसकी ओर दूसरे देशों का ध्यान भी आकर्षित हुआ। परिणामस्वरूप अब तक 40 से ऊपर यूरोप, अफ्रोका और एशिया के देश इसको अपना चुके हैं जैसे–ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, घाना, जाम्बिया, नाइजीरिया, पाकिस्तान, आदि। परन्तु हर देश ने इसमें अपनी–अपनी परम्पराओं और सामाजिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक संरचनाओं के अनुकूल अनिवार्य परिवर्तन किए हैं।

भारत में अम्बुड्समैन (ombudsman in India)

यद्यपि भारतीय संविधान न्यायपालिका और विधानमण्डल के माध्यम से नागरिकों की क्षतिपूर्ति के लिए नियंत्रण और संतुलन की व्यवस्था करता है, किन्तु व्यवहार में यह पर्याप्त नहीं है और इन तक नागरिकों की पहुंच आसानी से नहीं हो सकती। अतः अम्बुड्समैन जैसे संस्थान को स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की गई ताकि दुःखी नागरिक की पीड़ा या शिकायत का उपचार सस्ते सरल और शीघ्र तरीके से हो सके।

भारत में ऐसे संस्थान को स्थापित करने की माँग सर्वप्रथम 1960 में संसद सदस्य के० एम० मुंशी ने की थी। इसके उपरान्त 1962 में भारत के अटार्नी जनरल (Attorney-General) एम० सी० सीतेलवाड और 1963 में भारत के सर्वोच्च न्यायाधीश ने इस माँग का समर्थन किया। 1963 में संसद सदस्य एल० एम० सिंधवी ने इस विषय को संसद में उठाया। उसी वर्ष राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति ने ऐसे संस्थान को स्थापित करने की सिफारिश की। इस विषय को 1964 तथा 1965 में भी संसद में उठाया गया जिसके परिणामस्वरूप प्रशासनिक सुधार के लिए संसद सदस्यों का एक सलाहकार समूह स्थापित किया गया। 1966 में इस विषय पर प्रशासनिक सुधार आयोग (Administrative Reforms Commission) ने विचार किया और ऐसे दो संस्थानों को स्थापित करने की सिफारिश की–लोकपाल तथा लोकायुक्त। आयोग की सिफारिशों के अनुसार इन संस्थानों की अमुक विशेषताएँ होनी चाहिये।

1. वे जाहिर तौर पर स्वतंत्र और निष्पक्ष होने चाहिए।
2. उनके द्वारा की जाने वाली जाँच–पड़ताल और कार्यवाही गुप्त होनी चाहिए और यह अनौपचारिक भी होनी चाहिए।

3. जहाँ तक सम्भव हो सके उनकी नियुक्ति राजनीति से प्रभावित नहीं होनी चाहिए।
4. उनका पद देश में सर्वोच्च न्यायिक पद के सामान होना चाहिए।
5. वे ऐसे विषयों पर विचार करें जो स्वेच्छाचारिता के क्षेत्र में आते हैं और जिनमें अन्याय, भ्रष्टाचार अथवा पक्षपात का कार्य किया गया हो।
6. इनकी कार्यवाही में न्यायालयों का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए और सम्बन्धित सूचना प्राप्त करने के लिए उन्हें अधिकतम ढील और शक्तियाँ दी जानी चाहिए।
7. उन्हें सरकार से किसी लाभ अथवा वित्तीय लाभों की आशा नहीं करनी चाहिए।

इस विषय पर प्रशासनिक सुधार आयोग ने जो रिपोर्ट अक्टूबर 1966 में प्रस्तुत की, उसके साथ एक विधेयक का मसौदा तथा लोकायुक्त की व्यवस्था थी। आशय यह था कि लोकपाल केन्द्र तथा राज्यों के मंत्रियों और सचिवों के खिलाफ शिकायत सुनेगा और लोकायुक्त (जो केन्द्र तथा राज्यों दोनों में होंगे) निन अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतों का निर्णय करेगा।

मई 1968 में लोकसभा में लोकपाल विधेयक पेश किया गया और फिर अप्रैल 1971 और 1977 में विधेयक पेश किये गए, किन्तु उनका कोई परिणाम नहीं निकला। एक अन्य विधेयक लोकसभा में अगस्त 1985 में पेश किया गया। आधुनिकतम विधेयक 1996 में पेश किया गया, परन्तु इसकी धारायें पतनोन्मुख होने के कारण इसका बहुत विरोध हुआ।

राज्य स्तर पर अम्बुड्समैन (लोकायुक्त) (Ombudsman-Lokayukta at the State Level)

किसी न किसी कारणवश लोकपाल का संस्थान केन्द्रीय स्तर पर अभी तक स्थापित नहीं हो पाया, किन्तु राज्यों में स्थिति उत्साहजनक है। उड़ीसा ऐसा पहला राज्य था जिसने लोकायुक्त ऐक्ट को लागू किया। महाराष्ट्र ने सर्वप्रथम लोकायुक्त नियुक्त किया। राजस्थान ने 1973 में ऐसा विधान लागू किया। बिहार में लोकायुक्त संस्थान की स्थापना एक अध्यादेश जारी करके 1973 में की गई जिसको कुछ समय उपरान्त विधि का रूप दे दिया गया। उत्तर प्रदेश ने 1975 में लोकायुक्त और उपलोकायुक्त ऐक्ट पास किया। कर्नाटक ने फरवरी, 1983 में एक अध्यादेश लागू किया और 1985 में इसकों कानून का रूप दिया। आन्ध्र प्रदेश विधान सभा ने 1982 में लोकायुक्त और उपलोकायुक्त विधेयक पास किया। मध्य प्रदेश लोकायुक्त तथा उप–लोकायुक्त विधेयक को 1981 में पास किया गया और हिमाचल प्रदेश में ऐसा कानून 1983 में लागू किया गया। केरल में पब्लिक प्रीवैन्शन आफ करेप्शन ऐक्ट 1983 (Public Prevention of Corruption Act 1983) से लागू है और नागालैण्ड में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए विजिलैन्स आयोग (Vigilance Commission) कार्य कर रहा है। गुजरात भी शीघ्र ही ऐसा संस्थान स्थापित करने का यत्न कर रहा है। अतः भारत में अब तक आधे राज्य लोकायुक्त संस्थान की स्थापना कर चुके हैं।

दिल्ली का लोकायुक्त ऐक्ट 1996 में पास किया गया, यह अन्य राज्यों की तुलना में अधिक प्रगतिशील है क्योंकि यह ऐक्ट लोकायुक्त को ना केवल उन शिकायतों की जाँच–पड़ताल करने का अधिकार देता है जो उसको प्राप्त हुई हैं, अपितु उन अधिकारियों को दण्ड देने की सत्ता भी प्रदान करता है जो ऐक्ट के अधीन भ्रष्टाचार के दोषी पाये गये हैं। दिल्ली में एक लोकायुक्त तथा एक उप–लोकायुक्त होगा। किसी भी नागरिक को यदि किसी लोक–अधिकारी (नौकरशाह), सरकारी कर्मचारी, विधायक, नगर पार्षद या मंत्रिमण्डल के मंत्री या दिल्ली के मुख्यमंत्री के विरुद्ध कोई शिकायत है तो वह उसे सीधे लोकायुक्त को भेज सकता है। उसे उच्च न्यायालय के समान शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। अतः वह उन आरोपों की जाँच–पड़ताल कर सकता है जो उसके सम्मुख लाये गये हैं और जो व्यक्ति भ्रष्ट आचार के दोषी पाये गए हैं उनको दण्ड दे सकता है। उसके निर्णय के विरुद्ध अपील केवल सर्वोच्च न्यायालय को दी जा सकती है।

11. प्रशासन में नैतिकता एवं सत्यनिष्ठा
(Ethics and Integrity in Administration)

सामान्यतः लोकसेवा को एक उत्कृष्ट तथा गौरवमय व्यवसाय समझा जाता है। यह सेवा राष्ट्र के हित में है, और प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य की सेवा से बढ़ कर कोई और सेवा नहीं हो सकती। जो लोग लोकसेवा में जाना स्वीकार करते हैं वे धनी तथा प्रसिद्ध होने की सम्भावना नहीं रखते। उनमें से अधिकतर लोगों की लोकसेवा के मूल्यों में मौलिक निष्ठा होती है। अन्य लोकसेवा में कुछ समय कार्य करने के उपरांत ऐसी निष्ठा विकसित करते हैं। प्राचीन यूनानी नगर राज्य में एक नागरिक केवल राज्य सेवा में ही अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त करता था। यह नगर राज्य या ''पोलिस'' ही था जिसमें अच्छा जीवन सम्भव था। उसकी आत्मसम्पूर्णता तथा नगर–राज्य में सार्वजनिक जीवन को योगदान एक ही सिक्के के दो पहलू थे। हमें लोकसेवा में किस प्रकार के व्यक्ति चाहिये ? एम० आर० पिन्टों (M- R- Pinto), जे० जी० हालैण्ड की कुछ पंक्तियों को दुहराते हैं :

भगवान, हमें व्यक्ति दो।

भगवान, हमें व्यक्ति दो! आज की तरह का समय दृढ़ मस्तिष्कों, बड़े हृदयों, सत्य विश्वास तथा तत्पर हाथों की मांग करता है,

व्यक्ति जिनको पद की लालसा नष्ट नहीं करती

व्यक्ति जिनको पद के लाभ खरीद नहीं सकते

व्यक्ति जिनकी धारणायें और अन्तरात्मा है

व्यक्ति जिनका है सम्मान

व्यक्ति जो झुठ नहीं बोलेंगे,

निसंदेह ! आज के संसार में लोकसेवा में हमें ऐसे व्यक्ति ही चाहिये। प्रशासकों को ''सर्वव्यापी मूल्यों जैसे बुद्धिमता तथा श्रद्धा, ईमानदारी तथा सत्यनिष्ठा, मानवीय हितों के प्रति भक्ति, साथ ही साथ वे परम्परायें जो एक विशेष सभ्यता की विशेष सांस्कृतिक धारा में पसंद की जाती हैं, का एकीकरण दिखाना होगा। प्रशासकों को एक मिशन की भावना अन्तर्सम्बन्धों की समझ और समूचे लक्ष्यों तथा मूल्यों की विवशकारी अनुभूति विकसित करनी होगी।

आज का राज्य कल्याणकारी राज्य से भी आगे बढ़ गया है। यह पुनः विभाजक राज्य है या प्राकृतिक न्याय राज्य है, जिस में स्वतन्त्रता प्राप्ति, न्याय, समानता और सम्मान तथा सम्पूर्णता को प्राप्त करने पर बल दिया जाता है। इस प्रकार के उद्देश्य जनसेवा पर बल देते हैं और अनिवार्य रूप से मूल्यों, नियमों तथा नैतिकता के प्रश्नों को सामने ले आते हैं। आधुनिक प्रशासन की बढ़ती हुई जटिलता के लिए व्यवसायिक ज्ञान तथा विशेषज्ञता की आवश्यकता है। इसको सेवा की दिशा में चलना आवश्यक है, और सामान्य हित के प्रति वचनबद्धता तथा भक्ति की भावना होनी चाहिये। इसलिये प्रशासनिक व्यवहार तथा इसको प्रभावित करने वाले मूल्य बहुत महत्वपूर्ण हैं।

मूल्य मानव व्यवहार के पीछे प्रचालन शक्ति हैं। मनुष्य जो कुछ करता है वह उसकी मूल्य संरचना के संदर्भ में समझा जा सकता है। मूल्य ही मनुष्य के नियम, मानक तथा लक्ष्य निर्धारित करते हैं। चुने हुए लक्ष्यों को प्राप्त करने या कार्य के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए साधनों के चयन में भी मूल्य मनुष्य की सहायता करते हैं।

मूल्य प्रेरणा, इच्छा या आवश्यकता नहीं. कुछ और है। इसको प्रेरणा शक्ति के साथ अभिलाषणीय की धारणा

कहा गया है। मूल्य की परिभाषा इस प्रकार की गई है "एक प्रत्यक्ष या परोक्ष धारणा, एक अभिलाषीयों का समूह जिनकी अपनी पृथक् विशेषता या व्यक्तित्व है जो कार्य के उपलब्ध साधनों, शैलियों तथा लक्ष्यों में चयन को प्रभावित करता है।।

मूल्य एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति, समूह से दूसरे समूह और एक समुदाय से दूसरे समुदाय में भिन्न–भिन्न होते हैं। वे जड़ अथवा स्थायी नहीं होते। वे समय के साथ तथा अन्य कई तत्वों के प्रभाव जैसे– राजनीतिक या आर्थिक परिवर्तन, आर्थिक या सैद्धांतिक परिवर्तन आदि से परिवर्तित होते हैं। मूल्यों का संस्कृति के साथ बड़ा निकट का सम्बन्ध होता है। ये विभिन्न प्रकार के होते हैं : सामाजिक मूल्य, ऐतिहासिक मूल्य, संस्थात्मक मूल्य, संरचनात्मक मूल्य, राजनीतिक मूल्य, व्यवसायिक मूल्य तथा व्यक्तिगत मूल्य । सामान्यता प्रत्येक व्यक्ति सांस्कृतिक प्रभावों, विज्ञान तथा नवीनताओं, धर्म तथा जातीय प्रभाव और जीवन के अनुभवों के आधार पर अपनी मूल्य व्यवस्था निर्मित करता है।

कभी–कभी मूल्यों में टकराव भी आ जाता है। किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत मूल्य उसके व्यवसायिक या संस्थात्मक मूल्यों से टक्कर खा सकते हैं। लोक–अधिकारियों को इस प्रकार की दुविधा कई बार झेलनी पड़ती है। लोकसेवा में मुल्य–समूहों के टकराव के कारण नैतिक समस्यायें खड़ी हो जाती हैं। क्या एक अधिकारी अपने व्यक्तिगत मूल्य का पालन करेगा जो स्वयं परिवार तथा मित्रों के प्रति उत्तरदायित्व का समर्थक है? इसकी सार्वजनिक हित या व्यवसायिक उत्तरदायित्वों से टक्कर हो सकती है। इससे जो जटिल प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं, वे हैं : व्यक्ति को उचित कार्य करना चाहिये, परन्तु उचित क्या है ? इसकी परिभाषा कौन करेगा और किस के लिए? और किस उद्देश्य के लिए? व्यक्ति को ईमानदार होना चाहिये, परन्तु कैसे और कहाँ तक? व्यक्ति को अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये, परन्तु किसके प्रति और कैसा? व्यक्ति को सार्वजनिक हित में कार्य करना चाहिये, परन्तु सार्वजनिक हित की परिभाषा कौन करेगा?

लोकसेवा में आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्तिगत तथा व्यवसायिक या संस्थात्मक मूल्यों में समझौता होना चाहिये। पीटर ड्रकर (Peter Drucker) के अनुसार, 'संस्थात्मक तथा व्यक्तिगत मूल्यों का संगम ही प्रशासन का सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्त बन जाता है। शैलियों से बढ़ कर मूल्य ही प्रशासकों के कार्यों के अंतिम निर्णायक होते हैं। प्रशासक वह व्यक्ति है जो निर्णय करता है। यदि वह निर्णय करने में असफल रहता है, तो वह प्रशासक नहीं, केवल पद अधिकारी है। प्रशासक के रूप में उसके चरित्र पर बहुत दबाव रहता है। यदि वह किसी से डर जाता है, तो उसका नाश होगा। यदि वह किसी की आलोचना जिसमें बदनामी व निंदा भी सम्मिलित है, सहन नहीं कर सकता, तो वह भटक गया। यदि वह समान लोगों को समान व्यवहार नहीं दे सकता तो वह नष्ट हो गया । आज प्रशासक को इस व्यवहारिक तथा दर्शनात्मक बुद्धिमता के सामंजस्य की आवश्यकता है, जिसमें अनिवार्य नैतिक गुण हों जो उसे बनाये रखें, ताकि वह अपने कर्तव्यों का अच्छी प्रकार पालन कर सके। हचिंस (Hutchines) यह कहते हुए समाप्त करते हैं कि प्रशासक के पुरस्कार सार्वजनिक स्मारक, धार्मिक अनुष्ठान तथा आनन्दित लोगों के द्वीपों तक एक मनोरंजक यात्रा भले ही ना हो। इन वस्तुओं की चिंता उसे कदापि नहीं करनी चाहिये । उसको संतुष्टि, यदि वह असफल भी हो जाता है, इस बात से मिलेगी कि उसने मस्तिष्क के कठिनतम कार्यों में से एक को देखा और करने का प्रयास किया और जो सब से अधिक चुनौतीपूर्ण मानवीय कार्यों में से एक था।

मूल्य व्यवस्था अमुक तत्त्वों के आधार पर बनती है :

1. जिन मूल्यों का परिवार के भीतर प्रारम्भिक शिशुकाल में अंतर्निवेशन किया जाता है
2. शिक्षा

3. प्रशिक्षण
4. सार्वजनिक मीडिया या प्रसारण जैसे सिनेमा, टी. वी., समाचार पत्र तथा पुस्तकें
5. तकनीकी विकास घटनायें, तीव्र गति सार्वजनिक परिवहन, कम्प्यूटर तथा गर्भ–निरोधक उपचार
6. पर्यावरण
7. राजनीतिक व्यवस्था
8. समुदाय के भीतर धार्मिक तथा नैतिक विचार–चिंतन
9. नैतिक वातावरण
10. राष्ट्रीय संस्कृति, जाति स्वभाव तथा पर्यावरण

इकाई–4

12. सुशासन (Good Governance)

सुशासन (उत्तम अभिशासन) की अवधारणा

[THE CONCEPT OF GOOD GOVERNANCE]

अब कुछ दशकों से सुशासन (उत्तम अभिशासन) का मुद्दा राजनीति शास्त्र एवं लोक प्रशासन सम्बन्धी विचार–विमर्श और विद्वानां की चर्चाओं का प्रमुख विषय बन गया है। विश्व के विकसित और विकासशील दोनों हिस्सों में अब ध्यान केन्द्र सरकार और राजनीति की रूढ़िगत अवधारणाओं से हटकर उत्तम अभिशासन, उसकी विशेषताओं और अनिवार्यताओं की ओर हो गया है, जो कि एक स्वागतयोग्य बदलाव है।

राज्य, सरकार और प्रशासन का अस्तित्व ही पर्याप्त नहीं है। महत्वपूर्ण मुद्दा तो यह है कि राज्य कैसा है, सरकार और प्रशासन का स्वरूप कैसा है? क्या इसे 'अच्छी सरकार' अथवा 'सुशासन' अथवा उत्तम अभिशासन (Good Governance) कहा जाता सकता है? प्राचीन काल में 'सुशासन' को 'आदर्श राज्य' (Ideal State) अथवा 'राम राज्य' की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया गया है।

प्लेटो अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में एक ऐसे आदर्श राज्य का निर्माण करता है जिसकी बागडोर दार्शनिक प्रशासकों के हाथ में है। प्लेटो के अनुसार राज्य तभी आदर्श रूप प्राप्त कर सकता है जबकि उसका शासन (गवर्नेंस) योग्य, कुशल, ज्ञानी एवं स्वार्थहीन दार्शनिक शासकों के हाथों में हो। प्लेटो के समय में एथेन्स प्रजातन्त्र के, स्पार्टो सैनिकतन्त्र के तथा सिराक्यूज निरंकुशतन्त्र के दुर्गुणों से पीड़ित थे। शासक अज्ञानी, स्वार्थी और संकीर्ण होते थे एथेन्स जैसे नगर राज्य में लोकतन्त्र के नाम पर लाटरी प्रणाली के आधार पर शासकों का चयन होता था, अज्ञानियों और स्वार्थियों के हाथों में शासन की बागडारेर थी। प्लेटो ने व्यंग्य करते हुए यहां तक कहा कि बढ़ई और दर्जी होने के लिए भी कुछ प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, परन्तु शासक होने के लिए नहीं।

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में सुशासन (उत्तम अभिशासन) के सिद्धान्तों और प्रतिमानों पर बल दिए जाने को लेकर वस्तुतः कुछ भी नया नहीं है। शासकों के धर्म से बंधे होने की शासन व्यवस्था की प्राचीन भारतीय अवधारणा सच्चे अर्थों में जनता के लिए उत्तम अभिशासन (सुराज) सुनिश्चित करने की परिचायक थी। हालांकि राजतन्त्र मौजूद था फिर भी शासकों के दैवी अधिकारों अथवा स्वेच्छाचारी शासन का कोई सिद्धान्त नहीं था। राजधर्म आचरण की संहिता अथवा विधि व्यवस्था थी और वह शासक की इच्छा से ऊपर थी तथा उसके सभी कार्य उसी से शासित होते थे। जातक कथाएं, महाभारत का शान्ति पर्व – अनुष्ठान पर्व, शुक्राचार्य का नीतिसार, पाणिनि की अष्टाध्यायी, ऐतरेय ब्राह्मण और वाल्मीकि रामायण तथा कौटिल्य का अर्थशास्त्र जो कम महत्वपूर्ण नहीं है, सभी उत्तम अभिशासन के वर्णनों से भरपूर हैं। कौटिल्य ने अपनी कृति 'अर्थशास्त्र' में राजा (शासक) के लिए ऐसे ऊंचे मानदण्डों का आधार प्रस्तुत किया जिसकी अन्ततोगत्वा परिणति 'सुशासन' (Good Governance) में होती है।

कौटिल्य कल्याणकारी राज्य के पक्ष में है जिसमें शासक के सर्वोपरि लक्ष्य हैं – लोगों का कल्याण और समृद्धि (योगक्षेम) शासक जनता की सेवा के लिए है। उसकी स्वयं अपनी पसन्द अथवा रूचियां नहीं हो सकतीं। शासक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह विशेष रूप से प्राकृतिक आपदाओं के शिकार व्यक्तियों की वैसे ही रक्षा

करेगा जैसे कि ''एक पिता अपने पुत्रों की रक्षा करता है।''

उदार लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली वाले देशों में शासन के अस्तित्व का आधार 'सार्वजनिक हित' (Common good) की अभिवृद्धि के लिए माना जाता है। सार्वजनिक हित की अभिवृद्धि के लिए राज्य कतिपय संस्थाओं का निर्माण करता है। इस संस्थाओं में काम करने वाले लोगों का उद्देश्य 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय च' होता है। वे कर्तव्य भावना से अभिप्रेरित होकर जनता की सेवा को अपना अभीष्ट बना लेते हैं। राजकीय सेवा में कार्यरत ऐसे ही लोकसेवकों से उदार–लोकतन्त्र शासन के मूल्य सुदृढ़ होते हैं।

किन्तु पिछली शताब्दी में राज्य और लोक प्रशासन का सभी देशों में जो विशाल ढाचां खड़ा किया गया उसमें प्रशासन (Administration) तथा नौकरशाही (Bureaucracy) तो थी किन्तु 'गवर्नेंस' (Governance) कहीं भी दिखायी नहीं देती। राज्य और प्रशासन साध्य (end) बन गए और नागरिक साधन। नौकरशाही द्वारा संचालित प्रशासनिक व्यवस्था में लालफीताशाही, औपचारिकता, नियमों एवं विनियमों पर इतना अधिक जोर दिया जाने लगा कि कार्यशील सरकार के बजाय निकम्मी सरकार की छवि सर्वत्र परिलक्षित होने लगी। परिणामस्वरूप अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनो द्वारा शासन व्यवस्थाओं में सुधार के परिप्रेक्ष्य में अने अध्ययन किए गए। विश्व बैंक रिपोर्ट, 1992 ने 'सुशासन' (Good Governance) की नई अवधारणा का प्रतिपादन किया है, जिसके बारे में सभी देशों में विचार–मन्थन किया जाने लगा है।

हाल के वर्षों तक गवर्नेंस कार्य सरकार का विशेषधिकार माना जाता था, चूंकि उसके पास संप्रभु शक्ति थी। बाद में व्यापारिक निगमों की दुनिया ने भी गवर्नेंस शब्द का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया और 'कॉरपोरेट गवर्नेंस' का उच्चारण एक फैशन हो गया।

'गवर्नेंस' शब्दबन्ध में प्रशासन कम और प्रबन्ध का पुट अधिक होता है। 'गवर्नेंस' शब्दबंध 'प्रशासन' या 'सरकार' का ही पर्याय नहीं है। इसमें व्यक्ति ओर संस्थाएं, सार्वजनिक और निजी सभी संयुक्त रूप से अपने साझे मामलों का प्रबन्ध करती हैं। विश्व बैंक ने 'गवर्नेंस' के तीन विशिष्ट पहलुओं को रेखांकित किया हैः (अ) राजनीतिक सत्ता का प्रकार; (ब) विकास के लिए देश के आर्थिक और सामाजिक संसाधनों के प्रबन्ध हेतु सत्ता के प्रयोग की प्रक्रिया; तथा (स) नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन के लिए कार्यक्रमों की संरचना हेतु सरकार की क्षमता।

आधुनिक युग में 'गवर्नेंस' शब्दबन्ध का प्रचलन कब से हुआ, यह बताना सम्भव नहीं है तथापि ओसबोर्न और गैबलर की ऐतिहासिक रचना 'Reinventing Government' में उक्त अवधारणा की घोषणा की गई है।

प्लेटो के अनुसार सुशासन (Good Governance) का अर्थ है न्याय पर आधारित शासन और महाभारत के शान्तिपर्व में लिखा है कि सुशासन की नींव है धर्मनिष्ठ शासन। अलेक्जेण्डर पोप के अनुसार वही सरकार अच्छी है जिसका प्रशासन अच्छा हो; व्यक्तिवादी विचारक फ्रीमैन के अनुसार, ''वही सरकार अच्छी है जो कम से कम शासन करे।'' महात्मा गांधी ने राम राज्य की कल्पना की थी।

डेविड ओसबोर्न ओर टेड गैबलर ने सुशासन को उद्यमी सरकार (Entrepreneurial Government) का पर्यायवाची मानते हुए ऐसे शासन की कल्पना की जिसमें निम्नांकित लक्षण पाए जाते है : (1) उत्प्रेरक सरकार, (2) समुदाय आधारित सरकार, (3) प्रतिस्पर्द्धी सरकार, (4) सेवा प्रायोजित सरकार, (5) परिणामोन्मुखी सरकार, (6) ग्राहकोन्मुखी सरकार।

सब–सहारा–अफ्रीकी राज्यों से सम्बन्धित विश्व बैंक के 1989 के दस्तावेज में 'सुशासन' की अवधारणा का उल्लेख 'ठोस विकास प्रबन्ध' के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। इस सम्बन्ध में चार प्रमुख बिन्दुओं को रेखांकित किया गया : (1) सार्वजनिक क्षेत्र का प्रबन्ध, (2) जवाबदेयता, (3) विकास के लिए वैधानिक ढांचा, और (4) सूचना एवं पारदर्शिता।

ओईसीडी देशों से सम्बन्धित दस्तावेज में सुशासन से सम्बन्धित रेखांकित बिन्दु हैं : (1) सरकार की वैधता, (2)

सरकार के राजनीतिक एवं नौकरशाही तत्वों की जवाबदेयता, (3) नीति निर्माण एवं सेवा वितरण में सरकार, की दक्षता तथा (4) मानव–अधिकार एवं विधि के शासन का सम्मान।

'सुशासन' के लिए कतिपय आवश्यक बिन्दु निम्न रूप में रेखांकित किए जा सकते हैं :

1. प्रभावी और कुशल प्रशासन; 2. नागरिकों के जीवन–स्तर में सुधार; 3. संस्थाओं की वैधता एवं पैठ बनाना; 4. उत्तरदायी, मैत्रीपूर्ण एवं नागरिकों की देखभाल करने वाला प्रशासन; 5. जवाबदेयता सुनिश्चित करने वाला प्रशासन; 6. सूचना एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता प्रदान करने वाला प्रशासन; 7. मितव्ययी प्रशासन; 8. परिणामोन्मुखी प्रशासन; 9. लोकसेवाओं की गुणवत्ता

13. पारदर्शिता एवं लोक जवाबदेही
(Transparency & Public Accountability)

जवाबदेही (Accountability)

ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेजी भाषा में जवाबदेह (Accountable) शब्द का प्रयोग प्रथम बार 1583 वर्ष में वित्तीय संदर्भ में किया गया था। आज भी वित्तीय जवाबदेही धारणा का महत्वपूर्ण भाग है जो एक समाविष्ट धारणा है और इसमें सरकार द्वारा की जाने वाली सभी क्रियायें आ जाती हैं। जवाबदेही होने का अर्थ है सफाई पेश करने के लिये उत्तरदायी। अतः जवाबदेही का अर्थ है कि प्रशासन को जो सत्ता सौंपी गई है उसके प्रयोग के लिए जवाबदेह होना। एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि जवाबदेही किस के लिये? इसको निष्पादन से जोड़ा गया है, यह उपलब्धि–उन्मुखी है। ''.....प्रशासनिक जबाबदेही एक संगठनात्मक आवश्यकता है क्योंकि सर्वप्रथम, यह लक्ष्यों के संदर्भ में इसके निष्पादन के मूल्यांकन का प्रयास करती है। लक्ष्य को निश्चित कार्यों और दायित्वों में विभाजित किया जाता है, और प्रशासकों को व्यक्तिगत रूप में पूछा जाता है कि वे बतायें कि वे किस प्रकार अपने दायित्वों को पूरा कर रहे हैं। जवाबदेही प्रशासनिक दायित्व की सहगामी है. दूसरे शब्दों में, सिक्के का दूसरा पहलू है.....यह किसी भी संगठन के अंतर्भूत पदसोपान, नियंत्रण क्षेत्र, आदेश की एकता, निरीक्षण आदि सभी धारणायें जवाबदेही को प्रोत्साहित करने और लागू करने के यंत्र हैं। वार्षिक बजट भी यही करता है.....जवाबदेही का लाभ तभी होता है जब इसको दृढ़ता से और निकट से संगठन के लक्ष्यों और मूल कार्यों से जोड़ दिया जाता है।'' प्रशासनिक जवाबदेही उपलब्ध संसाधनों के अनुकूलन को निश्चित करने के साथ–साथ संगठनात्मक लक्ष्यों को पूरा करने का प्रयास करती है।

जवाबदेही के उपकरण (Tools of Accountability)

लोकतंत्र तथा कुशलता और प्रभावकारिता के हित में यह अनिवार्य है कि लोक–नौकरशाहियों को सीमित रखने के लिये उचित उपकरण या नियंत्रण ढूँढे जायें। नियंत्रण दो प्रकार के होते हैं वाह्य तथा भीतरी। प्रोफेसर फाईनर (Prof- Finer) के अनुसार, जवाबदेही को लागू करने का सर्वोत्तम तरीका ऐसे संस्थानों का विकास करना है जो लोक–नौकरशाही के कार्यों की सक्रिय ढंग से निगरानी करें और ऐसे अधिकारियों को दण्ड दें जो कुशासन के अपराधी हों। अपनी एजेन्सी से बाहर के लोगों के बल और निगरानी के कारण प्रशासक उचित व्यवहार करते हैं। उनकी धारणा यह है कि जो लोग सरकार के भीतर काम करते हैं वे उनसे भिन्न नहीं जो शेष समाज में रहते हैं। लाभ की इच्छा जैसे नियंत्रणों के अभाव में नीति–निर्माताओं के लिए आवश्यक है कि वे औपचारिक यंत्रावली के माध्यम से लोक प्रशासकों के निष्पादन की निगरानी करें।

विधानमंडल के प्रति कार्यकारिणी का उत्तरदायित्व, विधानमंडल की निगरानी, न्यायिक पुनर्निरीक्षण, लेखापरीक्षण, मंत्रालयों में वित्तीय परामर्श व्यवस्था आदि वाह्य औपचारिक नियंत्रणों के उदाहरण हैं। भीतरी औपचारिक नियंत्रण संगठनात्मक माध्यमों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं जिनके उदाहरण हैं पदसोपान, निरीक्षण, नियंत्रण, नियंत्रण क्षेत्र, आदेश की एकता, परीक्षण आदि। व्यवहार में इनके पूरक व इनको सुदृढ़ता प्रदान करने वाले वाह्य अनौपचारिक यंत्र भी समाज में होते हैं, जैसे लोक–प्रसारण, राजनीतिक दल. हित समूह, राजनीतिक तथा निर्वाचन प्रक्रिया. निगरानी संगठन आदि।

दूसरी ओर कार्ल फ्रेडरिच (Carl Friedrich) का मत है कि प्रशासकों में यथा–उचित मूल्यों का अंतर्निवेशन नौकरशाही पर मुख्य रोक का कार्य करता है। इस विचारधारा के अनुसार यदि लोक अधिकारियों में दृढ़

लोकतांत्रिक तथा प्रशासनिक मूल्यों का अभाव है तो औपचारिक संस्थात्मक चौक प्रायः असफल रहेंगे। सारांश यह है कि प्रशासकों में भीतरी कम्पास अथवा मूल्यों को होना अनिवार्य है जो उनको ठीक दिशा की ओर संकेत करे।

जवाबदेही संस्कृति से जुड़ी हुई (Accountability culture Oriented)

प्रशासनिक जवाबदेही की धारणा संस्कृति से जुड़ी होती है। प्रशासनिक व्यवस्था के सम्बन्ध में जनता की आशाओं की प्रकृति तथा मात्रा के साथ–साथ इस धारणा में भी परिवर्तन होता है। बहुत सीमा तक यह किसी राजनीतिक व्यवस्था का सांस्कृतिक वातावरण ही होता है जो उसके संदर्भ में प्रशासनिक जवाबदेही के अर्थ और जवाबदेही को परिभाषित करती है। सार्वजनिक नैतिकता तथा प्राशसनिक शिष्टाचार के प्रति समाज की वचनबद्धता एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न होती है। एक समाज में नियमों का उल्लंघन या रिश्वत स्वीकार करना अपराध समझे जाते हैं, परन्तु किसी दूसरे समाज में इसी कार्य को लोक–अधिकारियों से काम लेने के लिए एक स्वीकृत व्यवहार मान लिया जाता है। यह सांस्कृतिक परम्परा और लोक–अधिकारियों तथा सामान्य जनता के बीच पारस्परिक आकांक्षायें ही होती हैं, जो प्रशासनिक जवाब देही की सीमाओं को निश्चित करने की जिम्मेदार होती है। ब्रिटेन, फ्रांस तथा जर्मनी में प्रशासनिक वर्ग को जो सम्मान तथा उच्च स्थान प्राप्त है वह आस्ट्रेलिया तथा संयुक्त राज्य अमेरिका से भिन्न है, जहाँ इतना ऊँचा सम्मान व स्थान नहीं है। इस भेद का कारण उनके भिन्न–भिन्न इतिहास और संस्कृतियाँ हैं। इसी प्रकार जिन समाजों की ठोस या जड़ संरचना होती है, जो परिवार या कुटुम्ब की सदस्यता पर आधारित होते हैं, उनमें यदि कोई लोक–अधिकारी परिवार या रक्त सम्बन्धों की निकटता की अवहेलना करते हुए न्याय तथा औचित्य जैसे मूल्यों का समर्थन करने का प्रयास करेगा, तो उसे लोग बेमेल व्यक्ति समझेगें। किस सीमा तक और किस ढंग से प्रशासनिक जवाबदेही को प्राप्त किया जाऐगा, यह एक वैधानिक–संस्थात्मक प्रबन्धों तथा राजनीतिक संस्कृति का मुद्दा है।

जवाबदेही की सीमायें (Limitations to Accountability) : जवाबदेही की प्रक्रिया का कार्यान्वयन इतना सरल तथा सुगम नहीं है इस पर कई अंकुश हैं:

1. किसी व्यक्ति की व्यवसायिक नैतिकता की उसकी प्रशासनिक नैतिकता से टक्कर हो सकती है। ऐसा विशेषकर वहाँ होता है जहाँ सरकारी संगठनों में विशेषज्ञों या व्यवसायिक व्यक्तियों को नियुक्त किया गया हो। यहाँ प्रशासनिक जवाबदेही पर विशेषज्ञों द्वारा स्वीकार की गई आंतरिक मूल्य संरचना का अंकुश होता है। उदाहरणतया, सरकारी हस्पतालों में नियुक्त किये गये डाक्टरों की प्राथमिक भक्ति चिकित्सा व्यवसाय के नियमों के प्रति होती है। उनके द्वारा ऐसे नियमों का विरोध उचित होगा जो उनके रोगियों के साथ व्यवसायिक तथा नैतिक सम्बन्धों से टक्कर खाते हैं।

2. उन सरकारी उपक्रमों के प्रबन्धकों जो उत्पादन या आर्थिक या वाणिज्य कार्यों में लगे हैं, कि जवाबदेही उन प्रशासकों की जवाबदेही से भिन्न होगी जो एक प्रारूपी सरकारी विभाग में कार्य करते हैं। क्योंकि उन प्रबन्धकों को व्यापार की लाइन पर कार्य करना होता है और निजी क्षेत्र के साथ होड़ करनी पड़ती है।

3. कभी–कभी मजदूर संगठनों की कार्यवाही विभागीय नियमोंय अर्धनियमों या बजट सम्बन्धी नियमों के प्रति जवाबदेही को सीमित करते हैं।

4. चूंकि जबाबदेही संस्कृति से जुड़ी होती है (जैसा ऊपर कहा गया है) यह एक राजनीतिक व्यवस्था के सांस्कृतिक वातावरण के भीतर कार्य करती है। अतः बहुत हद तक प्रशासनिक जवाबदेही की प्रकृति तथा व्याख्या इसी द्वारा निश्चित की जाती है।

5. प्रशासनिक जबावदेही किसी देश की राजनीतिक संरचना से प्रभावित होती है। उदाहरणतया एक संघीय व्यवस्था में प्रशासनिक जवाबदेही की प्रकृति तथा सीमा उस से भिन्न होंगे जो एकात्मक सरकार व्यवस्था में

होते हैं। भारत जैसे देश में यह समस्या और भी जटिल हो जाती है क्योंकि यहाँ अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों की नियुक्ति तथा प्रचालन केन्द्रीय सरकार द्वारा किया जाता है परन्तु इनको राज्य सरकारों, स्वायत्त संगठनों, सरकारी निगमों आदि के अधीन कार्य करना पड़ता है। वे इन संगठनों के प्रति पूरी तरह जवाबदेह नहीं हो सकते क्योंकि वे केन्द्रीय सरकार की अनुशासन शक्ति के अधीन रहते हैं।

6. प्रशासनिक जवाबदेही उन स्थितियों तक सीमित रहती है जिनको ''प्रशासनहीनता (Non administration) कहा जा सकता है। वास्तव में वहाँ प्रशासनिक जवाबदेही लागू करना बड़ा कठिन हो जाता है जहाँ प्रशासन की गतिविधि नाममात्र भी नहीं है। ऐसी प्रशासनिक व्यवस्थाओं में जहाँ औपचारिक प्रशासनिक संस्थानों तथा कार्यप्रणालियों की अवहेलना करके निर्णय किये जाते हैं, वहाँ ठीक प्रशासनिक जवाबदेही की आशा करना लगभग असम्भव है। विश्व में ऐसी भी प्रशासनिक व्यवस्थायें हैं जहाँ कार्य करने के लिये सकारात्मक प्रोत्साहन नहीं है, और कार्य ना करने के नकारात्मक प्रोत्साहन बहुत होते हैं। ऐसी परिस्थितियों में प्रशासनिक जवाबदेही प्राप्त करना कठिन होता है।''

जवाबदेही के रूप (Forms of Accountability)

जवाबदेही के कई स्वरूप हैं परन्तु वे एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। जवाबदेही औपचारिक भी हो सकती है अर्थात् संस्थात्मक या अनौपचारिक भी हो सकती है अर्थात् लोकतांत्रिक और नैतिक। जवाबदेही के और भी स्वरूप हो सकते हैं जैसे– राजनीतिक जवाबदेही, प्रशासनिक जवाबदेही, विधानमंडलीय जवाबदेही, न्यायिक जवाबदेही आदि।

जवाबदेही निश्चित करने की रीतियाँ
(Ways to ensure Accountability)

1. प्रतिनिधि नौकरशाही (Representative Bureaucracy)

प्रशासनिक जवाबदेही केवल तभी आश्वस्त की जा सकती है यदि नौकरशाही को समाज के सभी महत्वपूर्ण समूहों का प्रतिनिधि बना दिया जाये।

परन्तु इस दृष्टिकोण को अधिकतर विद्वान स्वीकार नहीं करते। चार्ल्स एच लीवाईन (Charles H- Levine) तथा अन्य विद्वानों के अनुसार समाज में कुछ समूहों के प्रति जवाबदेही को प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिनिधि नौकरशाही एक वाहन के रूप में हो, प्रमाण इसकी सीमाओं की ओर संकेत करते हैं। यह अनिवार्य नहीं कि प्रतिनिधि नौकरशाही सदा ही प्रशासकों पर एक वांच्छनीय भीतरी अंकुश का कार्य करे।

2. लोक भागीदारी (Public Participation)

प्रशासनिक प्रक्रिया में जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी प्रशासनिक जवाबदेही को लागू करने के प्रयत्नों में से एक है। जनता की भागीदारी को अमुक से प्राप्त किया जा सकता है :

(क) पूरी नियोजन प्रक्रिया में परामर्श क्रिया

(ख) निर्णय करने वाले मंडलों (Boards) पर जनता का प्रतिनिधित्व तथा

(ग) धन तथा व्यय पर सामुदायिक नियंत्रण।

3. सकारात्मक सार (Positive Content)

जवाबदेही का सार गुणवाची होना चाहिए। कम से कम भारत में इस समय जवाबदेही को तिरस्कृत किया जाता

है। इसे एक पक्षीय नहीं रहना चाहिये जैसा यह आजकल है, वरन् इसे पुरस्कार तथा दण्ड के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। सामान्य दिखने वाला प्रशासनिक दृश्य जैसे निरुत्साही निष्पादन, सुरक्षित रह कर कार्य करने का ढंग, संगठन को नेतृत्व तथा प्रेरणा प्रदान न करना आदि को दुरुत्साहित किया जाना चाहिए।

4. प्रशासनिक सुधार (Administrative Reforms)

विकेन्द्रीकरण, हस्तांतरण (delegation), अंतरण (devolution) तथा बहानता (deconcentration) जवाबदेही के लिए महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार के सुधार की आवश्यकता कार्मिक प्रशासन, विशेषतया प्रशिक्षण, स्थापन (placement), निष्पादन मूल्यांकन, पदोन्नति आदि में भी है। प्रशासनिक सुधार प्रभावकारी जवाबदेही व्यवस्था के पूर्वापेक्षाओं में से एक है। यदि यह अपने में प्रबन्धन को अधिक अपनाने की अधिकतर मात्र में प्रवृत्ति दिखाती है तो लोक प्रशासन के लिए अधिक जवाबदेह बनना स्वभाविक होगा ।

5. नवीनीकारक कार्यप्रणालियाँ (Innovative Practices)

नवीनीकरण कार्यप्रणालियाँ जैसे सूर्यास्त विधान (sunset legislation), जीरो–बेस बजेटिंग (ZBB), सामाजिक लेखापरीक्षण (social audit), सूचना की स्वतंत्रता नियम, सूर्योदय संविधान (sunrise legislation) आदि अपनाये जाने चाहिये ताकि जवाबदेही को बढ़ाया जा सके।

कानून, नियम तथा अधिनियम स्थायी आधार पर नहीं बनाये जाने चाहिये, जैसा कि अब होता है। एक बार जब यह बना दिये जाते हैं तो ये चलते रहते हैं भले ही वे संगत रहे अथवा नहीं। प्रशासन को इन्हीं के आधीन कार्य करना पड़ता है भले ही अब इनकी आवश्यकता न रही हो। सूर्यास्त–विधान की धारणा का अभिप्राय है कि नियम और अधिनियम एक सीमित अवधि के लिये बनाये जाने चाहिये, और उस अवधि के बीत जाने पर, जब तक उनको पुनः अपनाया न जाये, वे सभी नियम वा कानून समाप्त हो जाने चाहिये। इससे उन नियमों अधिनियमों का समय–समय पर पुनर्निरीक्षण अनिवार्य हो जाएगा ताकि उनकी लगातार प्रमाणिकता पता लगती रहे।

दूसरी ओर सूर्योदय विधान का अभिप्राय यह है कि विधान की यह इच्छा है कि सभी सरकारी विचार–विमर्श पर सूर्य चमके। यह कानून विधानमंडल तथा कार्यकारिणी दोनों नीति–निर्माताओं पर लागू होते हैं इनका उद्देश्य बन्द दरवाजे के भीतर सभाओं को रोकना है, जहाँ सौदे तय किये जाते हैं। जो सदा जनहित को बढ़ाने के लिये नहीं होते।

अंत में यह ध्यान रखना होगा कि जवाबदेही आश्वस्त करने के प्रयास अमिश्रित वरदान नहीं हैं, वे नौकरशाही के आलस्य को बढ़ा भी सकते हैं। जेम्स फैसलर (James Fesler), का कथन है, कि नकारात्मक नियंत्रणों की बहुलता अविश्वास का व्यापक वातावरण उत्पन्न करती है, जो उनके मनोबल को नष्ट करती है जिन पर हम सार्वजनिक कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए आश्रित हैं... प्रशासन के बाहर के नियंत्रण आंत्रिक प्रशासनिक नियंत्रणों को कमजोर या विस्थापित करते हैं। प्रस्तावित निर्णयों के पुनर्निरीक्षण की आवश्यकताओं को बढ़ाकर वे लालफीताशाही कार्य में विलंब को बढ़ाते हैं. और जनता के प्रति प्रशासन की उत्तरदायिता को मंद बनाते हैं। अतः जवाबदेही के लिए इच्छा को उत्तरदायित्व तथा नीति के लक्ष्यों को कुशलता तथा प्रभावकारिता से प्राप्त करने की योग्यता के विरोध में संतुलित किया जाना चाहिये।

14. ई–शासन
(E-Governance)

सन् 1998 में प्रशासनिक सुधार विभाग ने केन्द्र सरकार की एक विशेष फाइल के सफर का रास्ता आंका था। किसी पिछले टेबल पर बंधी मेटलिक स्ट्रिप से सजी पर दरअसल वर्षो के लाल फीते से जकड़ी फाइल को आरम्भ होने से लेकर मंजूरी मिलने तक 48 टेबलों से होकर गुजरना पड़ा।

इसके ठीक विपरीत ई–प्रशासन (E-Governance) का चमत्कार देखिए। सन् 2000 के प्रारम्भ में पंजाब सरकार ने वेबसाइट पर फाइल मनिटरिंग व्यवस्था प्रयोग के तौर पर शुरू की। अगर हम आइकॉन पर क्लिक कर जरूरी सवाल टाइप कर दे ंतो वह हमको फाइल विशेष की स्थिति – वह मुख्यमन्त्री के कार्यालय में पहुंची है या नहीं, किस पदाधिकारी ने उसे देखा है, उसे किस विभाग ने कब भेजा है – के बारे में पूरी जानकारी मुहैया करा देता है।

सूचना प्रौद्योगिकी से संचालित प्रशासन ई–प्रशासन अब कल्पना की बात नहीं रह गई है। देश के कई हिस्सों में शहरी नागरिक अगर बिजली के बिल कम्प्यूटर के जरिए भर रहे हैं तो गांव के लोग भी जमीन के सौदों को मिनटों में पंजीकृत करा लेने की सुविधा उठा रहे हैं।

गवर्नेंस (Governance)

वर्तमान में प्रशासन के लिए गवर्नेंस (Governance) शब्द का प्रचलन है। आज तक शासन संचालन का अधिकार सरकार का एकाधिकार माना जाता रहा है क्योंकि उसके पास सम्प्रभु शक्ति के प्रयोग की क्षमता का प्रचलन एक फैशन बन गया। 'गवर्नेंस' से अभिप्राय है – "Governance is administration-cum-management plus……."

गवर्नेंस का अर्थ है – "Reinventing Government", "Mission-drive-Government". "Market oriented Government", "Service first", "Empowering citizens".

गवर्नेंस शब्द सरकार की भूमिका की पुनर्परिभाषा पर जोर देता है। ("Rederfining the role of government") सरकार की संख्या की सही सीमा ("Right size the Government") के निर्धारण को इंगित करता है, सरकार की पुर्नरचना तथा पुनर्गठन (Restructuring and Redesigning) की आवश्यकता को दर्शाता है।

सुशासन के कार्यक्रम की सूची

वर्तमान में हम केवल शासन के बारे में ही विचार नहीं करते अपितु सुशासन की आवश्यकता सर्वत्र महसूस करते हैं। प्रशासन का अस्तित्व मात्र सुशासन का पर्याय नहीं हो सकता तथापि सभी प्रशासन के लिए सुशासन का लक्ष्य विवादास्पद नहीं है। सुशासन की स्थापना के लिए निम्नांकित बिन्दुओं पर जोर दिया जाता है।

प्रभावी और कुशल प्रशासन; नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार; संस्थाओं की वैधता और पैठ बनाए रखना; प्रशासन को जवाबदेय, नागरिक हितैषी और मित्रवत् बनाना; उत्तरदायी प्रशासन की स्थापना; विचार एवं अभिवयक्ति की स्वतन्त्रता का संरक्षण; मितव्यायी ढंग से शासन कार्यो का संचालन; सरकारी विभागों की परिणामोन्मुखी बनाना; जनता को प्रदत्त सेवाओं में गुणात्मक सुधार; कार्मिकों की उत्पादन क्षमता बढ़ाना; भ्रष्टाचार का उन्मुलन; सत्ता के प्रयोग में स्वेच्छाचारिता को दर किनार करना; नागरिक–प्रशासन रिश्तों को मधुर बनाना; प्रशासनिक प्रक्रियाओं की जटिलता को दूर करने और नौकरशाही को कम करने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी आधारित उपकरणों का उपयोग।

ई – प्रशासन (E-Governance)

आजकल सर्वत्र एक नई अवधारणा गुंजायमान हो रही है और वह है ''ई–प्रशासन'' (E-Governance), ''इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन'' अथवा ''आई टी एडमिनिस्ट्रेशन''(IT- Administration)। ई–गवर्नेंस वैकल्पिक प्रशासन (E-Governance is the alternative government) है। ई–प्रशासन ऐसा शासन है जो कहीं भी किसी भी समय (E-Governance is government any time, any where) उपलब्ध है। ई–गवर्नेंस सक्षम सरकार, सर्वश्रेष्ठ सरकार और प्रभावीसरकार (E-Governance is really E-nabled government, E-xellent-Government and E-ffective government) है।

ई–प्रशासन और कुछ नहीं, बस अच्छा प्रशासन है, यह ई तो एक औजार मात्र है।

नैस्कॉम के अध्यक्ष स्व. देवांग मेहता के अनुसार ई–प्रशासन से तात्पर्य स्मार्ट गवर्नमेण्ट से है। स्मार्ट अर्थात ऐ से सिम्पल, एम से मॉडल, ऐ से एकाउन्टेबल, आर से रिस्पोन्सिबल तथा टी से ट्रान्सपेरेन्ट। तात्पर्य यह है कि सूचना तकनीकी के प्रयोग से सरकार स्मार्ट हो जाएगी।

''सूचना प्रौद्योगिकी से संचालित प्रशासन ई–प्रशासन है।''

''ई–प्रशासन'' ऑनलाइन प्रशासन है।

''ई–प्रशासन'' की विशेषताएं (Features of E-Governance)

पारम्परिक प्रशासन	ई–प्रशासन
1. भारी–भरकम टुटी–फटी कागजी फाइलों पर आधारित	1. कम्प्यूटर आधारित फाइल
2. पदसोपान आधारित अधिकार सत्ता	2. समतलीय संगठन – पदसोपान के कम–से–कम स्तर
3. सूचनाओं को गोपनीय रखकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन	3. सूचनाओं को बांटकर, सहभागिता को प्रोत्साहित कर सशक्त होना
4. व्यय उन्मुखी	4. उपलब्धि उन्मुखी
5. व्यक्ति उन्मुखी	5. संगठन उन्मुखी
6. निरीक्षण उन्मुखी	6. लक्ष्य उन्मुखी
7. विलम्ब होना स्वाभाविक	7. शीघ्रगामी–त्वरित
8. देरी से जवाब देना	8. तत्काल जवाबदेयता
9. मानव द्वारा आंकड़े तैयार करना	9. इलेक्ट्रानिक डाटा इन्टरचेन्ज
10. सामान्य दोहराव वाले कार्यों को अधिक समय देना ?	10. सृजनात्मक कार्यो के लिए अधिक समय
11. यथास्थितिवादी	11. निरन्तर सुधार पर जोर

राष्ट्रीय ई– गवर्नेंस

राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस योजना प्रधानमन्त्री द्वारा वर्ष 2002 में स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर घोषित की गई 15 महत्वपुर्ण शुरूआतों में से एक है। यह शुरूआत सरकार में सभी स्तरों पर ई–गवर्नेंस को बढ़ावा देने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम के कार्यान्वयन से सम्बन्धित है ताकि सरकार–नागरिक जनसम्पर्क में कार्यकुशलता, पारदर्शिता

और जवाबदेही को बेहतर बनाया जा सके। यह मद प्रधानमन्त्री द्वारा मॉनीटर की जा रही महत्वपूर्ण मदों में शामिल एक है। इस मद पर प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग तथा सूचना प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा संयुक्त रूप से कार्रवाई की जा रही है। प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग से सम्बन्धित महत्वपूर्ण मदों में शामिल एक अन्य मद नैशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ स्मार्ट गवर्नमेन्ट (एन. आई. एस. जी.) ही स्थापना करना है।

राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस योजना के तहत निम्नलिखित को समाविष्ट किया गया है :

1 कोर नीतियां 2 कोर अवसंरचना 3 मानव संसाधन विकास/प्रशिक्षण 4 तकनीकी सहायता 5 संगठनात्मक संरचना 6 अनुसन्धान और विकास 7 सहायक अवसंरचना 8 जागरूकता तथा मुल्यांकन 9 कोर ई–परियोजनाएं 10 एकीकृत सेवा योजना

राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस योजना के कार्यान्वयन के लिए प्राथमिकता के आधार पर निम्नलिखित उद्देश्यों को इस योजना के तहत चिन्हित किया गया :

केन्द्रीय सरकार – आयकर, पासपोर्ट, वीसा, आप्रवास, डी. सी. ए–21, बीमा राष्ट्रय नागरिकता डॉटाबेस, केन्द्रीय उत्पाद –शुल्क, पेन्शन बैंकिंग

राज्य सरकार – भूमि अभिलेख, सड़क परिवहन, सम्पति पंजीकरण, कृषि, खजाने, नगरपालिकाएं, ग्राम पंचायत, वाणिज्य कर, पुलिस

एकीकृत सेवांए – ई डी आई (ई–वाणिज्य), ई–बिज, सामान्य सेवा केन्द्र, इण्डिया पोर्टल, ई. जी. गेटवे सम्बन्धित मन्त्रालयो/विभागों को सुझाव दिया जाता है कि वे उनके वार्षिक योजना प्रक्षेपण में प्रत्येक परियोजना के उद्देश्य के लिए उद्देश्य प्रमुखों की नियुक्ति तथा कार्यान्वयन समिति के गठन के लिए आवश्यक निधि को दर्शाएं।

ई–प्रशासन के लाभ (ADVANTAGES OF E-GOVERNANCE)

1. ई–प्रशासन सरकार और लोगों के बीच सहज संवाद का प्रतीक है। इन्टरनेट, ई–मेल आदि के माध्यम से सरकार अपने नागरिकों से सीधा सेवाद स्थापित करने में सक्षम होगी।
2. ई–प्रशासन से पुरानी दुष्क्रियात्मक प्रक्रिया से सरकार को छुटकारा मिलेगा और काम करने के तरीकों मे अनवरत सुधार होगा।
3. दूर–दराज के गांवो को शहरों मे स्थित सरकारी दफतरों से जोड़कर दूरी को अर्थहीन किया जा सकेगा।
4. इससे आम लोगों का पैसा और समय बचेगा।
5. प्रशासन पारदर्शी होगा, लोगों के सूचना के अधिकार को अमली जामा पहनाना आसान हो जाएगा।
6. प्रशासन में शीघ्र निर्णय लिए जा सकेंगे, चुस्त और सही आंकडे एवं सूचनाएं सदैव उपलब्ध रहेंगी।
7. ई–प्रशासन से नौकरशाही का बोझ कम होगा, कर्मचारियों एवं लागत में कटौती सम्भव होगी।
8. कम्प्यूटरों के माध्यम से समन्वय आसान एवं उत्त्म हो सकेगा।
9. भ्रष्टाचार में कमी आएगी और सरकारी राजस्व वसूली प्र्याप्त ढंग से हो सकेगी।

ई – प्रशासन : चुनौतियां (E-Governance : Challenges)

आलोचकों का कहना है कि सॉफटवेयर निर्यात तथा विदेशों में भारतीय सॉफटवेयर पेशेवरों के सफल होने से भारत की गौरवशाली छवि बन जाना एक बात है, लेकिन देश में ई–प्रशासन को कायदे से 'आन–लाइन' चलाना बहुत सालों तक सपना ही बना रहने वाला है।

सूचना प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों का कहना हैं कि जिस तेजी से सूचना प्रौद्योगिकी का विस्तार हो रहा है और जिस तेजी से उसका व्यापारिक कामकाज में इस्तेमाल बढ़ रहा है, उसे देखते हुए ई–प्रशासन के मामले में गति बहुत धीमी है। जहां कहीं इसे अपनाया भी गया है, वहां उसका स्वरूप अभी प्रदर्शनात्मक (डेमोन्स्ट्रटिव) ही है।

ई–प्रशासन के लिए राजनेताओं का समर्थन एवं इच्छा शक्ति और तत्पर नौकरशाही चाहिए। नौकरशाही के रवैये मे परिवर्तन लाना सबसे कठिन काम है। महज कम्पयूटर खरी लेना और नेटवर्किंग कायम कर लेना ई–प्रशासन को कोई पहचान नहीं। अनेक सरकारी कार्यालय ऐसे हैं जहां ये सुविधाएं काफी समय से हैं लेकिन वहां काम फिर भी कागज पर ही होता है। कम्प्यूटर की व्यवस्था तभी अच्छी है जब उसमें आंकड़े भरने के काम में लगे लोग चुस्त और प्रशिक्षित हो। अतः ई–प्रशासन के लिए सरकारी कर्मियों को उच्च स्तर का व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाना उपरिहार्य है। वैसे 2003 तक सरकारी नियुक्तियों के लिए सूचना प्रौद्योगिकी का प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया गया है।

दूरसंचार संसाधनों के तेजी से विकास के साथ–साथ देश में इन्टरनेंट के तेजी से आगे बढ़ने की सम्भावना है लेकिन इसके साथ ही इस अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी के दुरूपयोग के कारण सायबर अपराधों के बढ़ने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। साइबरस्पेस ने साइबर अपराध, सुरक्षा निजता और वैयक्तिक नागरिक की हिफाजत को दाव पर लगा दिया है।

भारत जैसे देश में इन्टरनेट के उपयोग करने वालों का एक बहुत मामूली वर्ग खरीद–फरोख्त और भुगतान ऑन लाइन करने में विश्वास करता है और यदि इन्टरनेट पर धोखाधड़ी और जालसाजी की घटनाएं बढ़ती हैं तो इस प्रौद्योगिकी के उपयोग की सम्भावनाएं बढ़ने के बजाए कम होने लगेंगी।

ई–कॉमर्स और ई–प्रशासन को बढ़ावा देने के लिए पुलिस ओर जांच एजेन्सियों को प्रशिक्षित करके इस योग्य बनाया जाए कि वे सायबर क्राइम की जांच कर सकें। पुलिस में कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी में दक्ष विशेषज्ञ अधिकारियों और कर्मचारियों को प्रशिक्षित करके इन अपराधियों से निपट पाने के योग्य बनाना होगा।

15. सार्वजनिक निजी भागीदारी
(Public Private Partnership)

एक सार्वजनिक–निजी साझेदारी, या पीपीपी, एक सरकारी निकाय और एक निजी संस्था के बीच एक अनुबंध है, जिसमें कुछ सार्वजनिक लाभ, या तो एक संपत्ति या सेवा प्रदान करने का लक्ष्य है। सार्वजनिक–निजी भागीदारी आम तौर पर दीर्घकालिक होती है और इसमें निजी निगमों के बड़े हिस्से शामिल होते हैं। इन अनुबंधों का एक प्रमुख तत्व यह है कि निजी पक्ष को जोखिम के एक महत्वपूर्ण हिस्से पर ले जाना चाहिए क्योंकि अनुबंधित निर्दिष्ट पारिश्रमिक – निजी पार्टी को अपनी भागीदारी के लिए कितना प्राप्त होता है – आमतौर पर प्रदर्शन पर निर्भर करता है।

सार्वजनिक–निजी भागीदारी की सफलता

कई यूरोपीय देशों में लोकप्रिय, पीपीपी ने संयुक्त राज्य अमेरिका में अपेक्षाकृत धीमी शुरुआत की है, लेकिन वे बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचे और सार्वजनिक निर्माण परियोजनाओं के लिए तेजी से उपयोग किए जाते हैं। हाल के दशकों में कई पीपीपी परियोजनाएं बेहद सफल रही हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के वर्जीनिया में उच्च अधिभोग टोल लेन परियोजना एक अच्छा उदाहरण है। कई निजी क्षेत्र की कंपनियों ने इस भागीदारी में भाग लिया, जिसके परिणामस्वरूप लाखों डॉलर की लागत बचत हुई। इसके अलावा, सरकारी और निजी साझेदारों के बीच सहयोग एक पारंपरिक सरकार की तुलना में विस्तारित राजमार्ग क्षमता लाया।

सार्वजनिक–निजी भागीदारी लाभ

सार्वजनिक–निजी भागीदारी कई लाभ प्रदान करती है जिन्हें निम्नलिखित रूप में संक्षेपित किया जा सकता है :

- वे एक ऐसी पहल की तुलना में बेहतर बुनियादी ढांचा समाधान प्रदान करते हैं जो पूरी तरह से सार्वजनिक या पूरी तरह से निजी है। प्रत्येक प्रतिभागी वही करता है जो वह सबसे अच्छा कर सकता है।
- वे प्रदर्शन की माप और इसलिए लाभ के रूप में समय–से–पूर्ति को शामिल करके बुनियादी परियोजनाओं में तेजी से काम होने वाली परियोजनाओं को पूरा करते हैं और देरी को कम करते हैं।
- निवेश पर सार्वजनिक–निजी साझेदारी, या ROI, पारंपरिक, सभी–निजी या सभी सरकारी पूर्ति वाली परियोजनाओं से अधिक हो सकती है। जब दोनों संस्थाएं एक साथ काम करती हैं तो नवीन डिजाइन और वित्तपोषण दृष्टिकोण उपलब्ध हो जाते हैं।
- परियोजना की व्यवहार्यता का निर्धारण करने के लिए जोखिम को जल्दी से पूरी तरह से समझा दिया जाता है। इस अर्थ में, निजी भागीदार अवास्तविक सरकारी वादों या अपेक्षाओं के खिलाफ एक जाँच के रूप में काम कर सकता है।
- परिचालन और परियोजना निष्पादन जोखिम सरकार से निजी प्रतिभागी को हस्तांतरित किए जाते हैं, जिन्हें आमतौर पर लागत नियंत्रण में अधिक अनुभव होता है।
- सार्वजनिक–निजी भागीदारी में शुरुआती पूर्ण बोनस शामिल हो सकते हैं जो दक्षता को बढ़ाते हैं। वे कभी–कभी परिवर्तन आदेश लागत को भी कम कर सकते हैं।

- सरकार के निवेश की दक्षता में वृद्धि करके, यह सरकारी धन को अन्य महत्वपूर्ण सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों में पुनर्निर्देशित करने की अनुमति देता है।
- पीपीपी की अधिक दक्षता सरकारी बजट और बजट घाटे को कम करती है।
- उच्च गुणवत्ता वाले मानकों को परियोजना के पूरे जीवन चक्र में बेहतर तरीके से प्राप्त और रखरखाव किया जाता है।
- संभावित रूप से लागत को कम करने वाले सार्वजनिक–निजी भागीदारी से कम कर लग सकते हैं।

सार्वजनिक–निजी भागीदारी नुकसान

पीपीपी में कुछ कमियां भी हैं :–

- प्रत्येक सार्वजनिक–निजी भागीदारी में निजी प्रतिभागी के लिए जोखिम शामिल होते हैं, जो उचित रूप से उन जोखिमों को स्वीकार करने के लिए क्षतिपूर्ति की उम्मीद करते हैं। इससे सरकारी लागत बढ़ सकती है।
- जब केवल सीमित संख्या में निजी संस्थाएँ होती हैं जो किसी परियोजना को पूरा करने की क्षमता रखती हैं, जैसे कि जेट फाइटर के विकास के साथ, सीमित संख्या में निजी प्रतिभागी जो इन कार्यों को करने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम होते हैं, उनके लिए आवश्यक प्रतिस्पर्धा को सीमित कर सकते हैं।
- परियोजनाओं के लाभ ग्रहण किए गए जोखिम, प्रतिस्पर्धा के स्तर और परियोजना की जटिलता और दायरे के आधार पर भिन्न हो सकते हैं।
- यदि साझेदारी में विशेषज्ञता निजी पक्ष पर भारी है, तो सरकार अंतर्निहित नुकसान उठाती है। उदाहरण के लिए, यह प्रस्तावित लागतों का सही आकलन करने में असमर्थ हो सकता है।

16. वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के लोक प्रशासन पर प्रभाव

(Impact of Liberalization, Privatition & Globalization on Public Administration)

आधुनिक विश्व में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के विचार को 'मानव अधिकारों की सुरक्षा' एवं 'राष्ट्रों के मध्य सहयोगात्मक सम्बन्धों की स्थापना' के सन्दर्भ में विशेष महत्व दिया जा रहा है । इसी विचार के आधार पर बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में 'वैश्वीकरण' (Globalisation) एवं 'उदारीकरण' (Liberalisation) की धारणाएँ प्रमुखता के साथ प्रचलन में आई।

वैश्वीकरण का अर्थ (Meaning of Globalisation) :–'वैश्वीकरण' की धारणा के अन्तर्गत सम्पूर्ण विश्व को एक 'भूमण्डलीय गाँव' (Global Village) के रूप में देखा जाता है ।

वैश्वीकरण की अवधारणा निम्नलिखित तत्वों को निर्दिष्ट करती है :–

(1) विश्व के विभिन्न देशों के मध्य बिना किसी व्यवधान के वस्तुओं के आदान–प्रदान को सम्भव बनाने हेतु व्यापारिक अवरोधो को कम करना ।

(2) आधुनिक प्रौद्योगिकी (Modern Technology) का सम्पूर्ण विश्व में निर्बाध प्रवाह सम्भव बनाने हेतु अनुकूल वातावरण तैयार करना ।

(3) ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित करना जिनमें एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र के मध्य पूंजी का स्वतन्त्र प्रवाह सम्भव हो सके।

(4) विश्व के विभिन्न देशों के मध्य श्रम का निर्बाध प्रवाह सम्भव बनाना ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'वैश्वीकरण' (भूमण्डलीकरण) से अभिप्राय विश्व के समस्त संसाधनों, ज्ञान, जनशक्ति, सुविधाओं, बाजारों एवं सेवाओं आदि को विश्व के सभी लोगों को निर्बाध रूप से उपलब्ध कराना है । वैश्वीकरण के द्वारा ही एक देश की अर्थव्यवस्था सरलतापूर्वक विश्व की अर्थव्यवस्था से जुड़ जाती है ।

यह न केवल अर्थव्यवस्था एवं संचार से सम्बन्धित धारणा है वरन् सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रों में भी विश्व के एकीकरण का एक सार्थक प्रयास है। यह विश्व के समस्त लोगों के मध्य बंधुत्व की स्थापना करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। वस्तुतः यह विश्व के सभी भागों में रहने वाले लोगों के मध्य आर्थिक, व्यापारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों को एक व्यापक एवं गतिमान रूप प्रदान करने से सम्बन्धित प्रक्रिया है।

उदारीकरण का अर्थ (Meaning of Liberalisation): उदारीकरण का सीधा सम्बन्ध राज्य के अन्दर एवं बाहर मुक्त व्यापार की परिस्थितियों का क्रमिक विकास करने से है। अन्य शब्दों में, इसका अर्थ व्यापार को शनैः – शनैः कानूनों व नियमों के बन्धनों से मुक्त कर 'स्वतन्त्र बाजार व्यवस्था' की स्थापना करना है। उदारीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यापार उद्योग एवं निवेश के स्वतन्त्र प्रवाह में बाधा उत्पन्न करने वाले प्रतिबन्धों को समाप्त किया जाता है।

साथ ही विभिन्न करों में रियायत दी जाती है तथा सीमा शुल्कों में कटौती की जाती है। विदेशी निवेशकों को उनकी सम्पदा एवं पेटेन्ट की सुरक्षा के अधिकार की गारण्टी दी जाती है। उदारीकरण की धारणा 'सरकारीकरण' के स्थान पर 'निजीकरण' की समर्थक है।

'निजीकरण' (Privatisation): निजीकरण से तात्पर्य है– उद्योग एवं व्यापार को सरकारी क्षेत्र से निजी नियन्त्रण में लाना । आर्थिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप को क्रमशः कम करते हुए प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित करना। उदारीकरण की अवधारणा निजीकरण के माध्यम से सरकारी प्रतिष्ठानों में निजी निवेशकों की सहभागिता बढ़ाने की भी पक्षधर है ।

लोक प्रशासन पर प्रभाव (Effect on Public Administration): 1980 के पश्चात् से 'वैश्वीकरण' एवं 'उदारीकरण' के परिणामस्वरूप विश्व के सभी देशों में महान परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं। विभिन्न देशों में इन परिवर्तनों की गति भिन्न–भिन्न रही है। इन अवधारणाओं का प्रभाव सर्वप्रथम पश्चिम के विकसित देशों में देखने को मिला । तदुपरान्त साम्यवादी अर्थव्यवस्थाओं के विफल रहने पर सोवियत संघ व चीन जैसे साम्यवादी देश भी आर्थिक उदारीकरण की नीति को अपनाने के लिये विवश हुए।

भारत में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया राजीव गाँधी के समय आरम्भ हुई। 1991 में नरसिंहाराव के शासनकाल में सार्वजनिक क्षेत्र को सीमित करते हुए निजीकरण को प्रोत्साहित किया गया। इसके बाद अटल बिहारी वाजपेई सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मार्ग की बाधाओं को दूर किया । इस दौरान बड़े पैमाने पर भारत में बाह्य देशों से पूंजी निवेश हुआ।

'वैश्वीकरण' एवं 'उदारीकरण' की प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप लोक प्रशासन की भूमिका व स्वरूप में आये परिवर्तनों को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है :–

1. राज्य व सरकार की भूमिका का कम होना (Reduced Role of State and Government) :– 'लोक कल्याणकारी राज्य' की अवधारणा के अस्तित्व में आने के साथ ही राज्य के दायित्वों में भी वृद्धि हो गई थी । लोक कल्याणकारी राज्य में 'समाजवादी लक्ष्य' एवं 'नियोजित आर्थिक विकास' को प्राथमिकता देने के कारण भी यह वृद्धि होना स्वाभाविक था नियोजित आर्थिक विकास के अन्तर्गत आर्थिक गतिविधियों के नियन्त्रण एवं संचालन का सम्पूर्ण दायित्व राज्य व सरकार के हाथों में आ गया किन्तु उदारीकरण के परिणामस्वरूप निजीकरण को प्रोत्साहन दिया गया जिसके कारण राज्य व सरकार के अधिकांश कार्य निजी क्षेत्रों में आ गए। परिणामस्वरूप राज्य व सरकार की भूमिका कम होती चली गई ।

2. बाजारीकरण एवं निजीकरण पर बल (Emphasis on Marketisation and Privatisation) :– स्वातन्त्रोत्तर भारत में अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण हेतु कोटा परमिट व लाइसेन्स प्रणाली को आरम्भ किया गया, किन्तु 'उदारीकरण' की अवधारणा के अस्तित्व में आने के बाद कोटा, परमिट व लाइसेन्स प्रणाली को कम करने पर बल दिया गया । साथ ही बाजारीकरण व निजीकरण की प्रक्रियाओं को प्रोत्साहित किया गया ।

3. लोक प्रशासन की सकारात्मक भूमिका में वृद्धि (Increase in the Positive Role of Public Administration) :– उदारीकरण की प्रक्रिया के प्रारम्भ होने से पूर्व अर्थव्यवस्था राज्य के नियन्त्रण में थी तथा नौकरशाही का स्वरूप नकारात्मक तथा रोक लगाने की नीति से परिपूर्ण था किन्तु उदारीकरण के युग में नौकरशाही की भूमिका में परिवर्तन अपेक्षित था ।वर्तमान वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के युग में नौकरशाही से सहयोगात्मक रचनात्मक एवं सकारात्मक भूमिका के निर्वाह की अपेक्षा की जाती है । पश्चिम के विकसित देशों में लोक प्रशासन के क्षेत्र में संरचनात्मक एवं कार्यात्मक दृष्टि से सकारात्मक परिवर्तन किये जा चुके हैं किन्तु भारत जैसे विकासशील देशों में यह प्रक्रिया अभी जारी है ।

4. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का विनिवेशन (Investment in the Public Enterprises):– वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के इस युग में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में निरन्तर बढ़ती समस्याओं से जूझने के लिये इन क्षेत्रों में निजी क्षेत्रों की सहभागिता को प्रोत्साहित किया जा रहा है । सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में निजी विनिवेशन के

माध्यम से यह अपेक्षा की जाती है कि सार्वजनिक व निजी प्रबन्धक मिलकर उपक्रम की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि का प्रयास करेंगे । साथ ही विनिवेशीकरण की इस नीति के द्वारा भविष्य में सार्वजनिक उपक्रमों के निजीकरण का मार्ग प्रशस्त किया जा रहा है ।

5. प्रशासनिक सुधार (Administrative Reforms) :– वैश्वीकरण एवं उदारीकरण से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने के लिये प्रशासनिक सुधारों की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है तथा लोक प्रशासन को अधिकाधिक 'लक्ष्योउन्मुखी' (Goal - oriented) एवं 'परिणामोन्मुखी' (Results - Oriented) बनाने का प्रयास किया जा रहा है । लोक प्रशासन में कतिपय नवीन तत्वों यथा नव–लोक प्रबन्धन, ई–गवर्नेस, गुणवत्ता, जवाबदेही, पारदर्शिता आदि को सम्मिलित किया जा रहा है। प्रशासन के अधिकांश कार्य संविदा के आधार पर निजी क्षेत्रों को सौंपे जा रहे हैं । भारत में भी प्रशासनिक सुधार के ये प्रयास जारी हैं ।

6. लोक चयन सिद्धान्त पर बल (Emphasis on Public Choice Theory) :– लोक चयन सिद्धान्त का अर्थ है– जनता स्वयं ही सार्वजनिक हित प्रदान करने के साधन का चुनाव करें । सामान्यतया राज्य को ही सार्वजनिक हित का सम्पोषक माना जाता रहा है, किन्तु वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के बाद खुली अर्थव्यवस्था एवं निर्बाध व्यापार को महत्व दिया जाने लगा जिसके परिणामस्वरूप 'बाजारी शक्तियों' को भी 'सार्वजनिक हित' का सम्पोषक माना जाने लगा है ।

7. सरकार का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण (Too Much Decentralization of Government):– परिवर्तित परिस्थितियों की एक अन्य महत्वपूर्ण देन है– स्थानीय स्तर पर भी जनता की प्रशासन में भागीदारी को अधिकाधिक प्रोत्साहित करना। सरकार का दायित्व माना गया कि वह दूसरों को शासन चलाने में अधिकाधिक सहयोग दे । लोकहित को स्थानीय रूप में परिभाषित किया गया ।

8. सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों में प्रकार्यात्मक संयोजन (Functional Unity between Public and Private Enterprises) :– वैश्वीकरण एवं उदारीकण के प्रभावस्वरूप नौकरशाही को अधिक लचीला बनाने का प्रयास किया जा रहा है। इन नवीन अवधारणाओं ने नौकरशाही के परम्परागत स्वरूप को विकृतियों से युक्त एवं अधिकाधिक व्ययशील बताया है तथा सुझाव प्रस्तुत किया कि लोक प्रशासन की सेवाओं की गुणवत्ता में वृद्धि करने के लिये उनमें निजी क्षेत्र की सेवाओं एवं व्यवस्थाओं को विकसित किया जाना चाहिये संविदा के आधार पर सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में एक प्रकार्यात्मक संयोजन विकसित करने पर बल दिया गया है।

9. जन–भागेदारी का महत्व (Importance to Public Participation) :– लोक प्रशासन की नवीन धारणाओं के अन्तर्गत प्रशासन में जन–भागीदारी– 'निर्णयन एवं क्रियान्वयन रूप में' होना परम आवश्यक माना जा रहा है। स्थानीय स्तर तक जन भागीदारी के आधार पर ही सच्चे अर्थों में लोकहित की प्राप्ति सम्भव है। इससे जन भावना एवं जन आकांक्षाओं के अनुरूप लोकतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना हो सकेगी।

10. शासन की अधिकाधिक पारदर्शिता (Extensive Transparency of Administration) :–पारम्परिक लोक प्रशासन में पुरुषों का वर्चस्व था, किन्तु लोक प्रशासन की नई धारणाओं के अन्तर्गत प्रशासन में स्त्री व पुरुषों की समान भागीदारी होती है। इसके परिणामस्वरूप प्रशासन में भावनात्मक एवं मानवतावादी तत्वों का अच्छा संयोजन देखने को मिलता है। जनता को शासन की समस्त जानकारियों से अवगत कराने के लिए प्रभावी संचार व्यवस्था पर बल दिया जा रहा है।

17. नागरिक केंद्रित प्रशासन के लिए पहल
(Initatives towards Citizen Centric Administration)

भारत में सुशासन और नागरिक केंद्र प्रशासन के लिए पहल :–

स्वतंत्रता के बाद की अवधि में भारत ने विकास का एक समाजवादी और कल्याणकारी मॉडल अपनाया। विकास प्रशासन के दृष्टिकोण में लोगों की भागीदारी पर ध्यान दिया गया था। हालांकि, समय–समय पर प्रयासों और कार्यक्रमों के बावजूद, शासन की प्रक्रिया में लोगों की वास्तविक भागीदारी हासिल नहीं की जा सकी।

कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग, भारत में प्रशासनिक सुधारों की देखभाल करता है। इसके उद्देश्य हैं :

- सरकारी नीतियों, संरचनाओं और प्रक्रियाओं में प्रशासनिक सुधारों को बढ़ावा देना,
- शिकायत निवारण पर जोर देने के साथ नागरिक केंद्रित शासन को बढ़ावा देना,
- ई–गवर्नेंस में नवाचारों का संचालन करना।

दूसरा प्रशासनिक सुधार आयोग (ARC) की स्थापना भारत में सार्वजनिक प्रशासन प्रणाली को पुनर्जीवित करने के लिए एक ब्लू प्रिंट तैयार करने के लिए एक जनादेश के साथ की गई थी। सरकार के सभी स्तरों पर देश के लिए एक सक्रिय, उत्तरदायी, जवाबदेह, टिकाऊ और कुशल प्रशासन प्राप्त करने के लिए उपाय सुझाने की अपेक्षा की गई थी। आयोग के मुख्य कार्यों में से एक नागरिक प्रशासन से संबंधित था।

आयोग ने कहा कि नागरिक केंद्रित होने के लिए शासन को सहभागी और पारदर्शी होना चाहिए। यह नागरिकों के लिए प्रभावी, कुशल और उत्तरदायी होना चाहिए। इसके अलावा, नागरिकों की सेवा करने का एक लोकाचार सभी सरकारी संगठनों को देना चाहिए। सरकारी संगठनों को भी लोगों के प्रति जवाबदेह होना चाहिए। राज्य के प्राथमिक कार्यों में से एक अपने नागरिकों के कल्याण को बढ़ावा देना है। इसलिए शासन की संस्थाओं के कामकाज का मूल्यांकन अंततः नागरिकों को उनके द्वारा प्रदान की गई संतुष्टि पर आधारित होगा। इस संबंध में, प्रमुखता को स्वयं नागरिकों की आवाज से जुड़ा होना चाहिए।

विशेष रूप से, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने भारत में पारंपरिक लोक प्रशासन को पुनर्जीवित करने के लिए निम्नलिखित मुद्दों को देखा :–

1. जवाबदेह और पारदर्शी सरकार :– प्रशासन में जवाबदेही और पारदर्शिता की प्रणाली बनाने पर ध्यान केंद्रित किया गया था। प्रदान की गई सेवा में देरी से बचने की भी आवश्यकता थी।

2. प्रशासन को अधिक परिणामोन्मुखी बनाएं :– विभिन्न प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सरलीकृत उपयोगकर्ता के अनुकूल बनाया जाना था।

3. नागरिक केंद्रित प्रशासन :– कार्यक्रमों की अवधारणा और निष्पादन में बड़े पैमाने पर जनप्रतिनिधियों और समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित करें।

भारत में लोक प्रशासन को बदलने के उद्देश्य से सुधार :– बड़ी संख्या में सुधार उपाय हुए हैं, जिन्होंने प्रशासन को लोगों के करीब लाने की कोशिश की है। मोटे तौर पर इन पहलों में शामिल हैं :–

(1) लोगों को कुछ अधिकार देने वाले कानून बनाना

(2) नागरिकों की शिकायतों के निवारण के लिए नए संस्थागत तंत्र की स्थापना

(3) लोगों के करीब इकाइयाँ स्थापित करके नागरिकों तक पहुँच में सुधार करना

(4) नौकरशाही देरी को कम करने के लिए प्रक्रियाओं को सरल बनाना

(5) आंतरिक दक्षता में सुधार के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करना

(6) अच्छा प्रदर्शन करने वाले सरकारी कर्मचारियों को पुरस्कृत करना

(7) संगठन के भीतर अनुशासन में सुधार

(8) नियामक नियंत्रण को कम करना

(9) सार्वजनिक संपर्क कार्यक्रम आदि का आयोजन।

अभ्यास हेतू प्रश्न

1. कलात्मक सिद्धान्त का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
2. मैक्स वेबर के सन्दर्भ में नौकरशाही सिद्धान्त की समीक्षा कीजिए।
3. संगठनात्मक व्यवहार से आप क्या समझते है? इसके निर्धारक तत्वों का वर्णन करें।
4. संचार के अर्थ एवं महत्व की व्याख्या कीजिए। इसकी सर्वोत्तम तकनीक क्या है?
5. प्रशासकीय भ्रष्टाचार की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। इस पर कैसे काबू पाया जा सकता है?
6. भारत में शिकायत निवारण संस्थाओं की समीक्षा कीजिए।
7. लोक प्रशासन में उभरती हुई प्रवृत्तियाँ क्या है? विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
8. लेक प्रशासन पर वैश्वीकरण के प्रभावों की समीक्षा कीजिए।
9. वैज्ञानिक प्रबन्ध के लिए एफ. डब्ल्यू. टेलर के योगदान का वर्णन करे।
10. मैक्स वेबर के सन्दर्भ में नौकरशाही सिद्धान्त की समीक्षा करो।
11. अभिप्रेरणा की अवधारणा की व्याख्या करें और उसके निर्धारक तत्व क्या है?
12. संचार के अर्थ एवं महत्व का वर्णन करो ओर उसकी प्रभावी तकनीक क्या है?
13. भारत में शिकायत निवारण संस्थाओ की प्रक्रिया का वर्णन करो।
14. प्रशासन में नैतिकता की परिभाषित करते हुए इसके महत्व की समीक्षा करे।
15. सुशासन के यन्त्रों का विस्तारपूर्वक मूल्यांकन करों।
16. लोक प्रशासन पर उदारीकरण एवं वैश्वीकरण का क्या प्रभाव पड़ा है?

Short Answer Type Question

1. शास्त्रीय सिद्धान्त की विशेषताएं क्या है?
2. नव शास्त्रीय सिद्धान्त से आप क्या समझते है?
3. मनोबल क्या है?
4. निरीक्षण को परिभाषित करें।
5. ओम्बूड्समैन से आप क्या अर्थ लगाते है?
6. प्रशासनिक भ्रष्टाचार की परिभाषा दें।
7. लोक प्रशासन में उभरती हुई प्रवृत्तियां लिखो।
8. नागरिक केन्द्रित प्रशासन क्या है।
9. वैज्ञानिक प्रबन्ध क्या है?
10. नेतृत्व के विभिन्न सिद्धान्तों के नाम लिखिए।
11. प्रशासन में सत्यनिष्ठा को परिभाषित कीजिए।
12. सुशासन के कारक क्या है?
13. उदारीकरण से आप क्या अर्थ लगाते है?
14. ई–गवर्नेंस से आप क्या समझते है?
15. भू–मण्डलीकरण को परिभाषित करों।
16. पर्यवेक्षण की परिभाषा लिखों।